

ॐ

जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

दशवाँ } मार्गशिर { दूसरा अंक ।
भाग । } श्रीवीर नि० संवत् २४४० }

विषयसूची ।

	पृष्ठ
१ प्राचीन भारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श	६५
२ ग्रन्थ परीक्षा	७७
३ शिक्षा-समस्या	९०
४ वन-विहंगम	१०७
५ विविध प्रसंग	११३

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।

केशर ।

काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है । नई फसलकी उम्दा केशर शीघ्र मंगाईये । दर १) तोला ।

सूतकी मालायें ।

सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती हैं । जिन भाइयोंको सूतकी मालाओंकी जरूरत होवे हमसे मंगावें । हर वक्त तैयार रहती हैं । दर एक रुपयेमें दश माला ।

फूलोंका गुच्छा ।

इस गुच्छेमें चपला, वीरपरीक्षा, कुणाल, विचित्रस्वयंबर, मधु-खवा, शिष्यपरीक्षा, अपराजिता, जयमाला, कञ्जुका, जयमती और ऋणशोध ये ११ पुष्प हैं । प्रत्येक पुष्पकी सुगन्धि, सौन्दर्य और माधुर्यसे आप मुग्ध हो जावेंगे । हिन्दीमें खण्ड-उपन्यासों या गल्पोंका यह सर्वोत्तम संग्रह प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक कहानी जैसी सुन्दर और मनोरंजनक है वैसी ही शिक्षाप्रद भी है । मूल्य ॥=)

कहानियोंकी पुस्तक ।

इसमें छोटी छोटी सरल भाषामें लिखी हुई ७८ कहानियाँ हैं । ये कहानियाँ छोटे बड़े वृद्ध सबके ही लिये शिक्षादायक हैं । इसकी भाषा बड़ी ही सरल सबके समझने लायक है । लड़के लड़कियोंको इनाम देने योग्य पुस्तक है । मूल्य पांच आना ।

यशोधर चरित ।

स्याद्वाद विद्यापति-वादिराज सूरिके संस्कृत काव्यका सरल हिन्दी अनुवाद । इसमें यशोधर स्वामीका चरित वर्णन है । मूल्य चार आना ।

मिलनेका पता—भैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय ।

श्री मन्दिरजी की स्थापना * * *

* * * जैन हाईस्कूलका खुलना

पधारिए !

अक्षय धर्मप्रभावना !!

मिती चैत्र शु० ६, ७, ८, ९ और १० सं० २४४० वी० नि०
तदनुसार तारीख २, ३, ४, ५ और ६ अप्रैल १९१४
ई० को इन्दौर नगरमें उत्सव होगा.

दानवीर रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीके दो लाखके
दानसे जैन हाईस्कूल खुलेगा और सेठ साहिबकी
माताजीके बनवाये हुए मन्दिरजीकी प्रतिष्ठा होगी.

उत्सवमें श्रीमन्महाराजा तुकोजीराव इन्दौर नरेश
ओर उनके मन्त्री प्रसिद्ध देशभक्त सर नारायण गणेश
चंदावरकर, नाइट, पधारेंगे.

उत्सवमें प्रायः समस्त जैन पण्डित, व्याख्यानदाता
और प्रतिष्ठित सज्जन पधारेंगे, जैन सभाओंके
विशेष अधिवेशन होंगे ।

एक शिक्षाप्रद और नवीन जैन नाटक खेला जायगा.

पधारिए !

धर्मप्रभावना कीजिए !!

पत्रव्यवहारका पता:—

प्रबन्धकर्ता—उत्सव प्रबन्धकारिणी कमेटी,
तिलोकचंद जैन हाईस्कूल, इन्दौर.



जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१० वाँ भाग] मार्गशीर्ष, श्री० वी० नि० सं० २४४० । [२ रा अंक

प्राचीन भारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श ।

(टी. पी. कुम्पूस्वामी शास्त्री, एम. ए., असिस्टेंट; गवर्नमेंट म्यूजियम, तंजौरके एक अंगरेजी लेखका अनुवाद ।)

यह निघडक कहा जा सकता है कि वेदानुयायियोंके समान जैनियोंकी प्राचीन भाषा (प्राकृतसहित) संस्कृत थी । जैनी अबैदिक भारतीय-आर्योंका एक विभाग है । जैन, क्षपण, श्रमण, अर्हत् इत्यादि शब्द जो इस विभागके सूचक हैं, सब संस्कृतमूलक हैं । दिगम्बर और श्वेताम्बर यह दो शब्द भी, जो इस विभागकी संप्रदायोंके बोधक हैं, स्पष्टतया संस्कृतके हैं । जैन-दर्शनमें नौ पदार्थ माने गए हैं—जीव, अजीव, आस्रव (कर्मोंका आना), बंध (कर्मोंका आत्माके साथ बँधना), संवर (कर्मोंके आगमनका रुकना), निर्जरा (बँधे कर्मोंका नाश होना), मोक्ष (आत्माका कर्मोंसे सर्वथा रहित होना), पुण्य (शुभ कर्म) और पाप (अशुभ कर्म) । इन पदार्थोंमेंसे पहिले सात जैन-दर्शनमें तत्त्व कहे जाते हैं । हम यह भी देखते

हैं कि उपर्युक्त नौ पदार्थोंके नाम और वे शब्द भी, जो इनके अनेक विभागोंके सूचक हैं, सब संस्कृतशब्द-संग्रहसे लिए गये हैं।

२—इसके अतिरिक्त सब तीर्थंकर, जिनसे जैनियोंके विख्यात सिद्धांतोंका प्रचार हुआ है, आर्य्य—क्षत्रिय थे। यह बात सर्वमान्य है कि आर्य्य—क्षत्रियोंके बोलने और विचार करनेकी भाषा संस्कृत थी। जैसे कि वेदानुयायियोंके वेद हैं इसी प्रकार जैनियोंके प्राचीन संस्कृत ग्रंथ हैं जो जैनमतके सिद्धांतोंसे विभूषित हैं और वर्तमान-कालमें भी दक्षिण कर्नाटकमें मूडबद्रीके मंदिरोंके शास्त्रभंडारों और कुछ अन्य स्थानोंमें संग्रहीत हैं। ये प्राचीन लेख विशेषकर भोज-पत्रों पर संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें हस्तलिखित हैं। प्रसिद्ध मुनिवर उमास्वातिविरचित तत्त्वार्थ—शास्त्र, जो कि जैनधर्मके तत्त्वोंसे परिपूर्ण है, संस्कृतका एक स्मारक ग्रंथ है; यह ग्रंथ महात्मा वेदव्यास कृत उत्तरमीमांसाके समान है। ईस्वी सन्की द्वितीय शताब्दिके आरंभमें प्रसिद्ध समंतभद्रस्वामीने विख्यात गंधहस्ति महाभाष्य रचा। जो कि पूर्वोक्त ग्रंथकी टीका है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त दोनों ग्रंथोंपर औरोंने भी संस्कृतकी कई टीकायें रचीं। समंतभद्रस्वामीने उत्तरमें पाटलीपुत्रनगरसे दक्षिणी भारतवर्षमें भ्रमण किया। यही महात्मा पहले पहल दक्षिणमें दिगम्बरसंप्रदायके जैनियोंके निवास करनेमें सहायक और वृद्धिकारक होनेमें अग्रगामी हुए थे। इस संबंधमें यह बात याद रखने योग्य है कि श्वेताम्बरसंप्रदायके जैनी आजकल भी दक्षिण भारतवर्षमें बहुत ही कम हैं।

३—ऐसा मालूम होता है कि बहुत प्राचीन कालसे जैनियोंमें भी उपनयन (यज्ञोपवीत—धारण) और गायत्रीका उपदेश प्रचलित है। आजकल भी जैनमंदिरोंमें पूजन करनेमें और उन संस्कारोंमें जो

साधारणतया जैनियोंके घरोंमें किये जाते हैं जिस भाषाका प्रयोग किया जाता है वह संस्कृत ही है ।

४—जैनग्रंथकारोंने अपना ध्यान केवल धर्म—विषयमें ही नहीं किन्तु सर्व—रोचक विषयोंपर भी लगाया है, संस्कृतमें ऐसे, अगणित अन्यान्य ग्रंथ हैं जो कि अटूट परिश्रम करनेवाले जैनियोंने रचे हैं। शाकटायन व्याकरण, जो संस्कृत व्याकरणका एक ग्रंथ है, एक जैन ग्रंथकर्ता शाकटायनका रचा हुआ कहा जाता है। “लडः शाकटायनस्यैव,” “व्योर्लेघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य,” पाणिनिके सूत्र हैं जो इस बातको स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि शाकटायनकी स्थिति पाणिनिके पूर्व थी। शाकटायन—व्याकरणके टीका—कर्ता यक्षवर्माचार्यने ग्रंथकी प्रस्तावनाके श्लोकोंमें यह स्पष्टतया प्रगट किया है कि शाकटायन जैन थे और वे श्लोक ये हैं:—

स्वस्ति श्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ।
महाश्रमणसङ्घाधिपतिर्यः शाकटायनः ॥१॥
एकः शब्दाम्बुधिं बुद्धिमन्दरेण प्रमथ्य यः ।
स यशःश्रियं समुद्दधे विश्वं व्याकरणासृतम् ॥२॥
स्वल्पग्रंथं सुखोपायं संपूर्णं यदुपक्रमम् ।
शब्दानुशासनं सार्वमर्हच्छासनवत्परम् ॥३॥

* * * * *

तस्यातिमहतीं वृत्तिं संहत्येयं लघीयसी ।
संपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा ॥५॥

इनका अर्थ यह है कि “सकलज्ञान—साम्राज्यपदभागी श्रीशाकटायनने,—जो कि जैन समुदायके स्वामी थे—अपने ज्ञानरूपी मंद्राचलसे (संस्कृत) शब्दरूपी सागरको मथ डाला और व्याकरणरूपी अमृ-

तको यशरूपी लक्ष्मी सहित प्राप्त किया। यह महाशास्त्र—जो कि अर्हत भगवानके शासनके समान है—सर्वसाधारणके हितार्थ संपूर्ण, सुगम, और संक्षिप्त रीतिसे लिखा गया है। यह सरल टीका जो इसी ग्रंथकी (अमोघवृत्ति नामक) बृहद् टीका है—के आधारपर रची गई है और व्याकरणके सर्व गुणोंसे अलंकृत है—यक्षवर्माकृत है”।

५—इसके उपरान्त अमरकोश नामक प्राचीन कोशके रचयिता एक जैन कोशकार अमरसिंह थे जो कि महाविद्वान् तथा संस्कृत साहित्यके अष्ट—जगद्विख्यात—वैयाकरणोंमेंसे थे। सर्व टीकाकारों—ने इस, अमर ग्रंथका जैनकृत होनेपर भी सदृश मान किया है। क्रमशः ब्राह्मणोंके समान जैनियोंने भी उन लोगोंकी भाषा ग्रहण कर ली जिनके मध्यमें उन्होंने निवास किया; किन्तु कई शताब्दि होजानेपर भी वह आदर और प्रेम, जो उनको अपनी मातृ-भाषा संस्कृतसे था, नहीं घटा। क्योंकि उस अपूर्व विद्वत्तासे जो उन्होंने संस्कृतसाहित्यमें आगामी कालमें प्राप्त की, यह स्पष्ट है कि संस्कृतके अर्थ उनका आवेश अपरमित था। निम्नलिखित ग्रंथ जैनग्रंथकर्ताओंके रचे हुए हैं। व्याकरणके ग्रंथ—न्यास (प्रभाचंद्रकृत), कातंत्रव्याकरण अपरनाम कौमार व्याकरण (शर्ववर्मकृत), शब्दानुशासन (हेमचंद्रकृत), प्राकृत-व्याकरण (त्रिविक्रमकृत), रूपसिद्धि (दयापाल मुनिकृत), शब्दार्णव (पूज्यपादस्वामीकृत), इत्यादि; कोश—त्रिकांडशेष, नाममाला (धनञ्जयकृत), अभिधानचिंतामणि, अनेकार्थसंग्रह और हेमचन्द्रकृत अन्य कोश; पुराण—महापुराण, पद्मपुराण, पांडवपुराण, हरिवंशपुराण (प्राकृतमें),

१ अमरसिंह बौद्धसम्प्रदायके थे ऐसा प्रसिद्ध है। इनके जैन होनेके विषयमें अभीतक कोई सन्तोषयोग्य प्रमाण नहीं मिला है। —सम्पादक।

त्रिपष्टिशलाका महापुराण और अन्य ग्रंथ; **गद्यग्रंथ**—गद्य-चिन्तामणि, तिलकमंजरी, इत्यादि; **पद्यग्रंथ**—पार्श्वभ्युदय, पार्श्वनाथचरित, चंद्रप्रभचरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाणकाव्य, जयंतचरित, राघवपांडवीय (उपनाम द्विसंधानकाव्य), त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित, यशोधरचरित, क्षत्रचूड़ामणि, मुनिसुव्रतकाव्य, बालभारत, बालरामायण, नागकुमारकाव्य और अन्यग्रंथ; **चम्पू**—जीवंधरचम्पू, यशस्तिलकचम्पू, पुरुदेवचम्पू, इत्यादि; **अलंकारग्रंथ**—वाग्भटालङ्कार, अलंकारचिन्तामणि, अलंकारतिलक, हेमचंद्रकृत काव्यानुशासन, इत्यादि; **नाटक**—विक्रांतकौरवपौरवीय, अंजनापवनंजय, ज्ञानसूर्योदय, इत्यादि; **चिकित्साग्रंथ**—अष्टांगहृदय; **गणित** (खगोल) व **फलित** ज्योतिषग्रंथ—गणितसारसंग्रह, त्रिलोकसार, भद्रबाहुसंहिता, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रसूर्यप्रज्ञप्ति, इत्यादि; **न्यायग्रंथ**—आप्तपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, समयप्राभृत(?)न्यायविनिश्चयालंकार, न्यायकुमुदचंद्रोदय, आप्त-मीमांसासंस्कृति (अष्टसहस्री), इत्यादि; हेमचंद्रकृत योगशास्त्र और अन्यग्रंथ । जैन महात्माओं द्वारा रचित सैकड़ों ग्रंथोंकी गणना करना यहाँ संभव नहीं है । इनमेंसे कुछ ग्रंथ तो प्रभावशाली और अग्रशाली मनुष्योंद्वारा, जिन्होंने इस कार्यको प्रेम-कृत्य समझा है, प्रकाशित हो चुके हैं और शेष अभी समयके प्रकाशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

६—प्राचीन जैनियोंने अपने निवासस्थानोंमें अपने मतका प्रचार करनेके लिये बहुतसे अनुपम और उत्तम ग्रंथ लिखे । उन स्थानोंकी देशी भाषाओंके साहित्यकी वृद्धि करनेमें भी उन्होंने कुछ कम परिश्रम न किया । जो ग्रंथ उन्होंने देशी भाषाओंमें लिखे हैं वे अधिक-

१ अष्टाङ्गहृदयके कर्ता वैद्यवर वाग्भट जैन थे, इसमें भी सन्देह है । अब तककी खोजोंसे वे बौद्ध प्रतीत होते हैं ।

—सम्पादक ।

तर संस्कृत मूलग्रंथोंके आधारपर हैं। कुछ अज्ञात कारणोंके वश जैनी पराक्रम और संख्यामें घटने लगे, तब उनका गौरव भी नष्ट होने लगा। उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे यही अकास्मिक अनुमान होता है कि प्राचीनकालमें जैनियोंकी भाषा संस्कृत थी।

७—इसके पश्चात् अब हम इस बातपर विचार करेंगे कि जैनियोंने दक्षिण भारतवर्षमें अपने ग्रहण किये हुए देशोंके साहित्यकी उन्नतिके अर्थ क्या किया। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत-वर्षकी चार मुख्य द्रविडभाषाओं अर्थात् तामिल, तैलंग, मलयालम और कानडीमेंसे केवल प्रथम और अंतिमके साथ जैनियोंका संबंध रहा। यह बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि तैलंग तथा मलयालम भाषामें ऐसे किसी भी ग्रंथका अस्तित्व नहीं है जो किसी जैनकी लेखनीसे निकला हो। जबसे जैनी कर्नाट अथवा कनडी बोलनेवाले लोगोंके देशमें गए तबसे उन्होंने कनडी भाषामें हजारों ग्रंथ रच डाले हैं किन्तु इस छोटेसे लेखमें उनके विस्तारपूर्वक वर्णन करनेका अवकाश नहीं। तामिल भाषाके साहित्यमें जो उन्नति जैनग्रंथकारोंने की है, उसके विषयमें ये बातें जानने योग्य हैं:—

(क) तिरुकुरलको, जो एक शिक्षाप्रद ग्रंथ है, और वास्तविकमें तामिल काव्य है, अमर तिरुवल्लुवानयनरने रचा था। इनका यश इतना अधिक है कि कदाचित् हिन्दू इन्हें अपनोंमेंसे ही बतावें किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि वे जैन थे। इस ग्रंथमें सदाचार, धन और प्रेमका वर्णन १३३ अध्यायोंमें है और प्रत्येक अध्यायमें १० दोहे हैं। यह ग्रंथ अपने स्वभावमें ऐसा सर्व-देशीय है कि इसको बड़े बड़े लेखकोंने, जो कि भिन्न भिन्न धर्मोंके

अनुयायी हैं सहर्ष उद्धृत किया है और इसका अनुवाद यूरोपकी चारसे अधिक भाषाओंमें हो चुका है ।*

(ख) नालदियार नामक ग्रंथका संबंध कई जैन मुनियोंमें है और यह कहा जाता है कि इसको पद्मनार नामक जैनने उन्हीं मुनियोंके ग्रंथोंसे संग्रह किया था । इस काव्य-संग्रहमें ४०० चौपाइयाँ हैं और इसमें उन्हीं विषयोंकी व्याख्या है जिनकी कि तिरुकुलमें है । यह ईस्वी सन्की आठवीं शताब्दिके अंतिम अर्धभागमें रचा गया था जैसा कि मद्रुराके “ सडोंमिल” (वौल्यूम नं० ४, ५ और ६)में इस लेख लेखकके दिये हुए एक लेखके अवलोकनसे मालूम होगा । इस ग्रंथमें कई छंद हैं जो भर्तृहरि और अन्य संस्कृत लेखकोंके श्लोकोंके, आधारपर लिखे गये हैं ।†

* इस मतकी पुष्टिमें डाक्टर जी. ए. प्रियर्सन लिखते हैं कि “ इस (तिरु वल्लुवानयनर कृत कुरलमें.....२६६० छोटे छंद हैं । इसमें सदाचार, धन और सुखके तीन विषय हैं । यह तामिल साहित्यका सर्वमान्य महाकाव्य है । शैव, वैष्णव अथवा जैन प्रत्येक संप्रदायवाले इसके कर्ताको अपनी ही संप्रदायका बतलाते हैं; परन्तु बिशप कौल्डवैलका विचार है कि इस ग्रंथका ढंग औरोंकी अपेक्षा जैन है । इसके कर्ताकी विख्यात भगिनी जिसका नाम औवैयार “प्रतिष्ठित माता ” था सबसे अधिक प्रशंसनीय तामिल कवियोंमेंसे हैं । (देखो इम्पीरियल गजेटियर, वौल्यूम २, पृष्ठ ४३४) । —अनुवादक

† डा० प्रियर्सन इस संबंधमें लिखते हैं कि मुख्य तामिल साहित्य जैनियोंके ही परिश्रमका फल है । जिन्होंने ८ या ९ से लेकर १३ वीं शताब्दि तक इस भाषामें ग्रंथ रचनेका उद्योग किया । सबसे प्राचीन महत्त्वका ग्रंथ ‘नालदियार’ समझा जाता है और कहा जाता है कि इसमें पहिले ८००० छंद थे जिनको एक एक करके उतने ही जैनियोंने लिखा था । एक राजाने इसके लेखकोंसे विरोध किया और इन छंदोंको नदीमें फेंक दिया । इनमेंसे केवल ४०० छंद पानीके ऊपर तैरे और शेष लोप हो गए । आजकल ‘नालदियार’ में ये ही ४०० छंद हैं । प्रत्येक छंद सदाचारकी एक एक पृथक् सूक्ति है और शेषसे कोई संबंध नहीं रखता । इस संग्रहकी बहुत प्रतिष्ठा है और यह अब भी तामिल भाषाकी प्रत्येक पाठशालामें पढ़ाया जाता है । (इ० ग० वौ० २, पृष्ठ ४३४)

(ग) जीवकचिन्तामणि अर्थात् पौराणिक जीवक राजाका चरित जो एक विख्यात जैन मुनि तिरुत्तकुदेवर रचित है। इस पुस्तकमें १३ खंड अर्थात् लम्बक हैं जिनमें ३१४५ गाथायें हैं। इस संबंधमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसकी कुछ गाथाओंकी ठीक ठीक छाया (बिम्ब-प्रतिबिम्ब) वादीभसिंहकृत (संस्कृत) क्षत्रचूडामणिमें है और दोनोंमें इतनी समानता है कि यह बतलाना सर्वथा सम्भव नहीं है कि किसने किसका अनुकरण किया है। तामिल साहित्यके पंच-महाकाव्योंमें इसका स्थान प्रथम है। शेष चार काव्योंमेंसे दो काव्य अर्थात् ' वलयाप्ति ' और ' कुंदलकेसी ' दो ग्रन्थ जैन लेखकोंके बनाये हुए हैं। मालूम होता है कि इन दोनोंमेंसे कुंदलकेसीका अस्तित्व तो है नहीं और दूसरे काव्यके भी टुकड़े ही समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

(घ) पांच लघु कवितायें भी (जिनको सिरु-पंचकाव्य कहते हैं) सब जैनियोंद्वारा रची गई हैं।

(१) तोलामोलित्तेवर (विवादमें अजेय) कृत चूलामणिमें २१३१ चौपाइयाँ १२ सर्गोंमें हैं और यह ग्रंथ ईसाकी दसवीं शताब्दिके आरंभमें रचा गया था। मिस्टर टी. ए. गोपीनाथ एम. ए., सुपरिन्टेण्डेन्ट ऑफ आर्चिऔलाजी, टूवनकोर, ने जो संस्कृत यशोधर-काव्यकी प्रस्तावना लिखी है उसमें स्पष्टतया अपनी यह सम्मति दी है कि श्रवणबेलगोलाके महिषेणके समाधिरेखके श्रीवर्द्धदेव और तोलामोलित्तेवर एक ही हैं और जिस ग्रंथका हवाला उस लेखमें दिया है वह उसी नामका तामिल काव्य ही है।

(२) यशोधरकाव्य एक अज्ञात जैन कृत है। इसमें चार सर्ग हैं जिनमें ३२० छंद हैं। यह पौराणिक राजा यशोधरका चरित्र है। इस

१. चूलामणि: कवीनां चूलामणिनामसेव्यकाव्यकविः ।

श्रीवर्द्धदेव एव हि कृतपुण्यः कीर्त्तिमाहर्तुम् ॥

ग्रंथमें कई ऐसी गाथायें हैं जो उसी नामके संस्कृत ग्रंथके कई श्लोकोंसे इतनी विशेषतर मिलती जुलती हैं कि यह तामिलका ग्रंथ उस संस्कृत ग्रन्थका पद्यानुवाद कहा जा सकता है।

(३) उदयानन गधई, जो कि वत्सदेशके राजा उदयनका चरित है। छह सर्गोंका एक अज्ञात जैन कृत ग्रंथ है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रंथको एक दूसरे उदयन-काव्य नामक ग्रंथके साथ न मिला देना चाहिए। क्योंकि उसमें भी वही चरित है किन्तु वह एक दूसरे ग्रंथकर्ताका बनाया हुआ है। इसमें ६ सर्ग हैं जिनमें ३६७ गाथायें सर्वथा भिन्न भिन्न छंदोंकी हैं। वह ग्रंथ जिसकी गणना पांच लघु कविताओंमें है उपर्युक्त पहला ग्रंथ है, क्योंकि विख्यात टीकाकार जैसे 'नच्छनर्किनियर' इत्यादिने अपने ग्रन्थोंमें इसी ग्रंथमेंसे वचन उद्धृत किये हैं।

(४) नागकुमार काव्य, जो कि कालके विनाशसे बञ्चित नहीं रहा है।

(५) नीलकेसी जो १० सर्गोंमें है। इस ग्रंथमें जैनधर्मके तत्त्वोंकी पुष्टि की गई है; इसके कर्ताका पता नहीं। इस ग्रंथपर मुनि 'समय दिवाकर' की लिखी हुई एक बड़ी टीका है।

(६) पंडित गुणवीररचित 'वज्जिरानंदिमलई,' जो कि एक कविता है।

(७) मेरुमंदरपुराण, जिसके कर्ता वामनाचार्य हैं जो कि संस्कृत और तामिल दोनोंके समान पंडित हैं। इस ग्रंथमें १४०६ गाथायें हैं जो १२ सर्गोंमें हैं। इसमें दो भाई मेरु और मंदरका वृत्तांत और जैनमतका संपूर्ण विवरण दिया है।

(छ) शिक्षाप्रद कवितायें—

(१) 'पलामोली,' जैनकवि 'मुतरुरई अरायनर' कृत बुद्धिविषयक सूक्तियोंका ग्रंथ है जिसमें ४०० गाथायें हैं और प्रत्येक गाथामें किसी विख्यात सूक्तिकी व्याख्या है जो उसीके अंतमें दी गई है।

(२) 'आचारक्कोवई,' 'पेरूवेपीमुलेर' कृत (१०० गाथाओंका) ग्रंथ है जिसमें सदाचारके नियम लिखे हैं।

(३) तिरुकडुकम, जो 'नलुत्तागर' कृत है।

(४) सिरुपंचमूलम, जो 'ममूलनर' के एक शिष्यकृत है।

(५) पेलदी, जिसके कर्त्ता 'मदुरई मामिलसंगमफेम' के 'मक्कापनर' के एक शिष्य हैं; इत्यादि अन्य ग्रंथ।

(ज) व्याकरण—

(१) 'अहापोरुल्लिक्कानम,' जो कि तामिलकी सबसे प्राचीन तोलकाप्पियम नामक व्याकरणके तृतीय भागका संक्षेप है। इसमें पांच अध्याय हैं और 'नरक्कवि राजनंदी' जैन कृत है।

(२) पप्पुरंकलम, मुनिकनकसागर कृत छंद और अलंकारका ग्रंथ है, जिसमें तीन सर्ग हैं और ९५ गाथायें हैं।

(३) यप्पुरंकल करिकई, अमृतसागर मुनि कृत पूर्वोक्त ग्रंथकी टीका है।

(४) विराचोलियम, जो राजा वीरचोलको समर्पित एक व्याकरणका ग्रंथ है। इसके कर्त्ता बुद्धमित्र हैं जो संभवतः जैन थे। इसमें १५१ गाथायें हैं और उसीकी एक टीका भी है। इसमें वर्ण, शब्द, वाक्य, छंद तथा अलंकारोंका वर्णन है। यह ग्रंथ ईस्वी सन्की ११ वीं शताब्दिके लगभग लिखा गया था, (देखो "सँडामिल', चौल्यूम १०, पृष्ठ २८७।)

(५) ननुल, इसके कर्ता प्रसिद्ध पवनदी (भवनन्दिन) थे, जिन्होंने यह ग्रंथ चोल वंशके कुलोत्तुंग तृतीयके एक जागीरदार अम-
राभरण सिपा गंगाके अनुरोधसे १२ वीं शताब्दिके अंतमें लिखा था,
क्योंकि यह भला भाँति मात्तूम है कि कुलोत्तुंग तृतीय ईस्वी सन्
११७८ में सिंहासनाखट्ट हुए थे । इस ग्रंथमें केवल वर्णों और शब्दोंका
विवरण है और वर्तमान कालमें अधिकताने प्रामाणिक समझा जाता है ।

(६) नेमिनिद्रम पंडित गुणवीर कृत एक व्याकरण ग्रंथ है
जिसमें वर्णों और शब्दोंका विवरण है । इसमें ९६ गाथायें हैं और
उनकी टिप्पणियाँ भी हैं ।

(७) कोष—चूडामणि निघंटु, मंडलपुरुष कृत, १२ अध्या-
योंमें है और दो अन्य कोशों ' दिवाकरनिघंटु ' और ' पिगलंतई ' के
आधार पर है । मंडलपुरुषने अपने आपको उत्तरपुराणके कर्ता
गुणभद्राचार्यका शिष्य बताया है । क्योंकि यह अच्छी तरह मात्तूम है
कि उत्तरपुराण ईस्वी सन् ८८८ में समाप्त हुआ और क्योंकि मंडल-
पुरुषने राष्ट्रकूटवंशीय राजा अकालवर्ष कृष्णराजका वर्णन किया
है जो ईस्वी सन् ८७५ और ९११ के मध्यमें राज्य करते थे, अत-
एव यह ग्रंथ ईस्वी सन्की १० वीं शताब्दिके प्रथम चतुर्थांशमें लिखा
गया होगा ।

(८) ज्योतिष—जिनेन्द्रमलई, जो कि ज्योतिषका सर्व-प्रिय तामिल
ग्रंथ है । प्रायः इसके रचयिता जिनेन्द्र व्याकरणके कर्ता (पूज्यपाद) थे ।

८—हमको वर्तमान कालमें जैनियों कृत केवल उपर्युक्त ग्रंथ ही
मात्तूम हैं । मद्रास यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) ने अपनी आर्ट्स परी-
क्षाओंके लिए इनमेंसे कई ग्रन्थोंको पाठ्य पुस्तकें नियत कर दिया है ।
इनमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंको आधुनिक तामिल विद्वानोंने, जो कि अजैन

हैं, प्रकाशित किया है और इनमेंसे बहुतसोंको उत्तम टीकाओं सहित प्रकाशित किया है। यह खेदका विषय है कि दक्षिणी भारतवर्षके जैनियोंने अपने सहधर्मियोंके दक्षिणी भारतके साहित्यके इन बहुमूल्य ग्रंथोंके मुद्रित करनेमें तथा उन कई अन्य अत्यन्त निर्मल, और स्वच्छ किरणोंवाले रत्नोंको, जो बहुतसे प्राचीन जैन घरों और मठोंके जीर्णशास्त्रमंडारों, और अंधेरी गुफाओंमें गढे हुए पड़े हैं, प्रकाशित करनेमें अब तक बहुत कम रुचि प्रकट की है जब कि उनके उत्तरीय साथी अपनी स्वाभाविक उदारतासे जैन-गौरवको फैलानेमें, अग्रसर हुए हैं; क्योंकि उन्होंने ऐसे विद्यालय और छात्रालय खोले हैं जो कि विशेषकर उन्हींकी जातिके व्यक्तियोंके निमित्त हैं, जैनकर्त्ताओंके ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, सार्वजनिक पुस्तकालय जिनमें संस्कृत, बंगला, हिंदी, तामिल इत्यादिके केवल जैनग्रंथ हैं स्थापित किये हैं, और ऐसे ही अन्य कार्य किये हैं जो उनको सहधर्मियोंकी, जो उत्तरीय भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं, उन्नति और वृद्धिमें सहायक हैं। आशा की जाती है कि दक्षिण भारतवर्षके जैनी भी अपनी जात्युन्नतिकी अनुयोग्यता (जिम्मेवारी) को, जो उनके ऊपर है, समझ कर जागृत हो जावेंगे और अपने उत्तरीय भाइयोंके उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

मोतीलाल जैन,

आगरा

ग्रन्थपरीक्षा ।

(१)

उमास्वामि श्रावकाचार ।

(गताङ्कसे आगे ।)

(२) अब, उदाहरणके तौरपर, कुछ परिवर्तित पद्य, उन पद्योंके साथ जिनको परिवर्तन करके वे बनाये गये मालूम होते हैं, नीचे प्रगट किये जाते हैं। इन्हें देखकर परिवर्तनादिकका अच्छा अनुभव हो सकता है। इन पद्योंका परस्पर शब्दसौष्टव और अर्थगौरवादि सभी विषय विद्वानोंके ध्यान देने योग्य है:—

१—स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।

निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

(रत्नकरण्डश्रावकाचार)

स्वभावादशुचौ देहे रत्नत्रयपवित्रिते ।

निर्घृणा च गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥४१॥

(उमास्वामि श्राव०)

२—ज्ञानं पूजां कुलं जार्तिं बलमृद्धिं तपो वपुः।

अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

(रत्नकरण्ड श्रा०)

ज्ञानं पूजां कुलं जार्तिं बलमृद्धिं तपो वपुः।

अष्टावाश्रित्यमानित्वं गतदर्पमिदं विदुः ॥८५॥

(उमा० श्रा०)

३—स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।

वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥

(रत्नकरण्ड श्रा०)

धर्मकर्मरतेर्देवात्प्राप्तदोषस्य जन्मिनः ।

वाच्यतागोपनं प्राहुरार्याः सदुपगूहनम् ॥५४॥

(उमास्वामि श्रा०)

- ४—दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
 प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
 (रत्नकरण्ड० श्रा०)
 दर्शनज्ञानचारित्रत्रयाद्भृष्टस्य जन्मिनः ।
 प्रत्यवस्थापनं तज्ञाः स्थितीकरणमूचिरे ॥ ५८ ॥
 (उमा० श्रा०)
- ५—स्वयूथ्यान्प्रतिसद्भावसनाथापेतकैतवा ।
 प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलष्यते ॥ १७ ॥
 (रत्नकरण्ड० श्रा०)
 साधूनां साधुवृत्तीनां सागाराणां सधर्मिणाम् । *
 प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं तज्ञैर्वात्सल्यमुच्यते ॥ ६३ ॥
 (उमा० श्रा०)
- ६—सम्यग्ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं वदन्ति जिनाः ।
 ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानंतरं तस्मात् ॥ ३३ ॥
 (पुरुषार्थसिद्धयुपाय)
 सम्यग्ज्ञानं मतं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं यतः ।
 ज्ञानस्याराधनं प्रोक्तं सम्यक्त्वानंतरं ततः ॥ २८७ ॥
 (उमा० श्रा०)
- ७—हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत् ।
 बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥ १०८ ॥
 (पुरुषार्थसि०)
 तिलनाल्यां तिला यद्वत् हिंस्यन्ते बहवस्तथा ।
 जीवा योनौ च हिंस्यन्ते मैथुने निचकर्मणि ॥ ३७० ॥
 (उमा० श्रा०)
- × × × × × ×
 ८—मनोमोहस्य हेतुत्वान्निदानत्वाच्चदुर्गतेः ।
 मद्यं सद्भिः सदात्याज्यमिहामुत्र च दोषकृत् ॥
 (यशस्तिलक)

* यह पूर्वाधं ' स्वयूथ्यान्प्रति ' इस इतनेही पदका अर्थ मालूम होता है ।
 शेष सद्भावसनाथा...” इत्यादि गौरवान्वित पदका इसमें भाव भी नहीं आया ।

मनोमोहस्यहेतुत्वान्निदानत्वाद्भवापदाम् ।

मद्यं सद्भिः सदा हेयमिहामुत्र च दोषकृत् ॥ २६१ ॥

(उमा० श्रा०)

९—मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् ।

अष्टौ शंकादयश्चेतिद्वदोषाः पंचविंशतिः ॥

(यशस्तिलक)

मूढत्रिकं चाष्टमदास्तथानायतनानि षट् ।

शंकादयस्तथाचाष्टौ कुदोषाः पंचविंशतिः ॥ ८० ॥

(उमा० श्रा०)

* * * * *

१०—साध्यसाधनभेदेन द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते ।

कथ्यते क्षायिकं साध्यं साधनं द्वितयं परं ॥ २-५८ ॥

(अमितगत्युपासकाचार)

साध्यसाधनभेदेन द्विधासम्यक्त्वमीरितम् ।

साधनं द्वितयं साध्यं क्षायिकं मुक्तिदायकम् ॥२७॥

(उमा० श्रा०)

* * * * *

११—या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः ।

धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ २-२ ॥

देवे देवमत्रिधर्मधर्मधीर्मलवर्जिता ।

या गुरौ गुरुताबुद्धिः सम्यक्त्वं तन्निगद्यते ॥ ५ ॥

१२—हन्ता पलस्य विक्रेता संस्कर्ता भक्षकस्तथा (उमा० श्रा०)

केतानुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनुः ॥३-२०

(योगशास्त्र)

हन्ता दाता च संस्कर्तानुमन्ता भक्षकस्तथा ।

केतापलस्य विक्रेता यः स दुर्गतिभाजनं ॥ २६३ ॥

(उमा० २५७)

१३—स्त्रीसंभोगेन यः कामज्वरं प्रति चिकीर्षति ।

स हुताशं घृताहुत्या विध्यापयितुमिच्छति । (योगशास्त्र)

१ इसके आगे 'मनुस्मृति'के प्रमाण दिये हैं; जिनमेंसे एक प्रमाण "नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा....." इत्यादि ऊपर उद्धृत किया गया है ।

मैथुनेन स्मरान्नि यो विध्यापयितुमिच्छति ।
सर्पिषा सज्वरं मूढः प्रौढं प्रति चिकीर्षति ॥ ३७१ ॥
(उमा० १५)

३४-कम्पः स्वेदः श्रमो मूर्छा भ्रमिर्ग्लानिर्बलक्षयः ।
राजयक्ष्मादिरोगाश्च भवेयुर्मैथुनोत्थिताः ॥ २-७२ (योगशास्त्र)
स्वेदो भ्रान्तिः श्रमो ग्लानिर्मूर्च्छा कम्पो बलक्षयः ।
मैथुनोत्था भवत्येते व्याधयोप्याध्वयस्तथा ॥ ३६५ ॥
(उमा. श्रा०)

१५-वासरे च रजन्यां च यः स्वादन्नेव तिष्ठति ।
शृंगपुच्छपरिभृष्टः स्पष्टं स पशुरेव हि ॥ ३६२ (योगशास्त्र)
खादन्यहर्निशं येऽत्र तिष्ठन्ति व्यस्तचेतनाः ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टास्ते कथं पशवो न च ॥ ३२३ (उमा० श्रा०)
अहो मुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नान्यसौ पुण्यभाजनं ॥ ३६३ ॥
वासरस्य मुखे चान्ते विमुच्य घटिकाद्वयम् ॥ ३२४ ॥
योऽशनं सम्यगाधत्ते तस्यानस्तमितव्रतम् ॥ (उमा० श्रा०)
रजनीभोजनत्यागे ये गुणाः परितोपि तान् ।
न सर्वज्ञादृते कश्चिदपरो वक्तुमीश्वरः ॥ ३७० ॥ (योगशास्त्र)
रात्रिभुक्तिविमुक्तस्य ये गुणाः खलु जन्मिनः ।
सर्वज्ञमन्तरेणान्यो न सम्यग्वक्तुमीश्वरः ॥ ३२७ ॥
(उमास्वा० श्रा०)

योगशास्त्रके तीसरे प्रकाशमें, श्री हेमचंद्राचार्यने १९ मलीन कर्मादा-
नोंके त्यागनेका उपदेश दिया है। जिनमें पांच जीविका, पांच
वाणिज्य और पांच अन्यकर्म हैं। इनके नाम दो श्लोकों (नं. ९९-
१००) में इस प्रकार दिये हैं:—

१ अंगारजीविका, २ वनजीविका, ३ शकटजीविका, त्राटकजी-
विका, ५ स्फोटकजीविका, ६ दन्तवाणिज्य, ७ लाक्षावाणिज्य,

८ रसवाणिज्य, ९ केशवाणिज्य, १० विषवाणिज्य, ११ यंत्रपीडा, १२ निर्लाञ्छन, १३-असतीपोषण, १४ दवदान और १५ सरःशोष । इसके पश्चात् (श्लोक नं ११३ तक) इन १४ कर्मादानोंका पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णन किया है । जिसका कुछ नमूना इस प्रकार है:—

“ अंगारभ्राष्ट्रकरणांकुंभायःस्वर्णकारिता ।

ठठारत्वेष्टकापाकावितीहांगारजीविका ॥ १०१ ॥

नवनीतवसाद्रक्षौद्रमद्यप्रभृतिविक्रयः।

द्विपाच्चतुष्पादविक्रयो वाणिज्यं रसकेशयोः ॥ १०८ ॥

नासाघेधोद्भनमुष्कच्छेदनं पृष्टगालनं ।

कर्णकम्बलविच्छेदो निर्लाञ्छनमुदीरितं ॥ १११ ॥

सारिकाशुकमार्जाराश्वकुर्कटकलापिनाम् ।

पोषो दास्याश्च वित्तार्थमसतीपोषणं विदुः ॥ ११२ ॥

(योगशास्त्र)

इन १५ कर्मोंका निषेध किया गया है, प्रायः इन सभी कर्मोंक निषेध उमास्वामिश्रावकाचारमें भी श्लोक नं. ४०३ से ४१२ तक पाया जाता है । परन्तु १४ कर्मादान त्याज्य हैं; वे कौन कौनसे हैं और उनका पृथक् पृथक् स्वरूप क्या है; इत्यादि वर्णन कुछ भी नहीं मिलता । योगशास्त्रके उपर्युक्त चारों श्लोकोंसे मिलते जुलते उमास्वामिश्रावकाचारमें निम्नलिखित श्लोक पाये जाते हैं; जिनसे मादूम हो सकता है कि इन पद्योंमें कितना और किस प्रकारका परिवर्तन किया गया है:—

“ अंगारभ्राष्ट्रकरणमयःस्वर्णादिकारिता ।

इष्टकापाचनं चेति त्यक्तव्यं मुक्तिकांक्षिभिः ॥ ४०४ ॥

नवनीतवसामद्यमध्वादीनां च विक्रयः ।

द्विपाच्चतुष्पाच्चविक्रेयो न हिताय मतः क्वचित् ॥ ४० ॥

कंटनं नासिकावेधो मुष्कच्छेदोऽग्निभेदनम् ।
 कर्णापनयनं नामनिर्लीछनमुदीरितम् ॥ ४११ ॥
 केकीकुक्कटमार्जारसारिकाशुकमंडलाः ।
 पोष्यं तेन कृतप्राणिघाताः पारावता अपि ॥ ४०३ ॥
 (उमास्वा० श्रा०)

भगवदुमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्रपर 'गंधहस्ति' नामका महाभाष्य रचनेवाले और रत्नकरंड श्रावकाचारादि ग्रंथोंके प्रणेता विद्वच्छिरोमणि स्वामी समन्तभद्राचार्यका अस्तित्व विक्रमकी दूसरी शताब्दीके लगभग माना जाता है; पुरुषार्थसिद्धयुपायादि ग्रंथोंके रचयिता श्रीमदमृतचंद्रमूरिने विक्रमकी १० वीं शताब्दीमें अपने अस्तिवसे इस पृथ्वी-तलको सुशोभित किया है; यशस्तिलकके निर्माणकर्ता श्रीसोमदेवसूरि विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें विद्यमान थे और उन्होने वि. सं. १०१६ (शक सं. ८८१) में यशस्तिलकको बनाकर समाप्त किया है; धर्मपरीक्षा तथा उपासकाचारादि ग्रंथोंके कर्ता श्रीअमितगत्याचार्य विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं; योगशास्त्रादि बहुतसे ग्रंथोंके सम्पादन करनेवाले श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रमूरि राजा कुमारपालके समयमें अर्थात् विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें (सं. १२२९ तक) मौजूद थे; और पं. मेधावीका अस्तित्वसमय १६ वीं शतब्दी है। आपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारको विक्रम संवत् १५७१में बनाकर पूरा किया है।

अब पाठकगण स्वयं समझ सकते हैं कि यह ग्रंथ (उमास्वामि-श्रावकाचार), जिसमें बहुत पीछेसे होनेवाले इन उपर्युक्त विद्वानोंके ग्रंथोंसे पद्य लेकर उन्हें ज्योंका त्यों या परिवर्तित करके रखा है, कैसे सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ हो सकता है? सूत्रकार भगवान्

१ 'निर्लीछन' का जब इससे पहले इस श्रावकाचारमें कहीं नामनिर्देश नहीं किया गया, तब फिर यह लक्षण निर्देश कैसा ?

उमास्वामिकी असाधारण योग्यता और उस समयकी परिस्थितिको, जिस समयमें कि उनका अवतरण हुआ है, सामने रखकर परिवर्तित पद्यों तथा ग्रंथके अन्य स्वतंत्र बने हुए पद्योंका सम्यगवलोकन करनेसे साफ मात्तम होता है कि यह ग्रंथ उक्त सूत्रकार भगवान्का बनाया हुआ नहीं है। बल्कि उनसे दशोंशताब्दी पीछेका बना हुआ है।

इस ग्रंथके एक पद्यमें व्रतके, सकल और विकल ऐसे, दो भेदोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि सकल व्रतके १३ भेद और विकल व्रतके १२ भेद हैं। वह पद्य इस प्रकार है:—

“सकलं विकलं प्रोक्तं द्विभेदं व्रतमुत्तमं ।

सकलस्य त्रिदश भेदा विकलस्य च द्वादश ॥ २५७ ॥

परन्तु सकल व्रतके वे १३ भेद कौनसे हैं? यह कहींपर इस शास्त्रमें प्रगट नहीं किया। तत्त्वार्थसूत्रमें सकलव्रत अर्थात् महाव्रतके पांच भेद वर्णन किये हैं। जैसा कि निम्नलिखित दो सूत्रोंसे प्रगट है:—

“हिंसानृत्तस्तेयब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ ७-१ ॥

“देशसर्वतोऽणुमहती” ॥ ७-२ ॥

संभव है कि पंचसमिति और तीन गुप्तिको शामिलकरके तेरह प्रकारका सकलव्रत ग्रंथकर्त्ताके ध्यानमें होवे। परन्तु तत्त्वार्थसूत्रमें, जो भगवान् उमास्वामिका सर्वमान्य ग्रंथ है, इन पंचसमिति और तीन गुप्तिओंको व्रतसंज्ञामें दाखिल नहीं किया है। विकलव्रतकी संख्या जो बारह लिखी है वह ठीक है और यही सर्वत्र प्रसिद्ध है। तत्त्वार्थसूत्रमें भी १२ व्रतोंका वर्णन है जैसा कि उपर्युक्त दोनों सूत्रोंको निम्नलिखित सूत्रोंके साथ पढ़नेसे ज्ञात होता है:—

“अणुव्रतोऽगारी” ॥ ७-२० ॥

“दिग्देशानर्थदण्डत्रिरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च” ॥ ७-२१ ॥

इस श्रावकाचारके श्लोक नं. ३५८*में भी इन गृहस्थोचित व्रतोंके पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे, वारह भेद वर्णन किये हैं। परन्तु इसी ग्रंथके दूसरे पद्यमें ऐसा लिखा है कि—

“एवं व्रतं मया प्रोक्तं त्रयोदशविधायुतम्।

निरतिचारकं पाल्यं तेऽतीचारास्तु सप्ततिः ॥ ४६१ ॥

अर्थात्—मैंने यह तेरह प्रकारका व्रतवर्णन किया है जिसको अतीचारोंसे रहित पालना चाहिये और वे (व्रतोंके) अतीचार संख्यामें ७० हैं।

यहांपर व्रतोंकी यह १३ संख्या ऊपर उल्लेख किये हुए श्लोक नं. २५९ और ३२८ से तथा तत्त्वार्थसूत्रके कथनसे विरुद्ध पड़ती है। तत्त्वार्थसूत्रमें ‘सल्लेखना’को व्रतोंसे अलग वर्णन किया है। इस लिये सल्लेखनाको शामिल करके यह तेरहकी संख्या पूरी नहीं की जा सकती।

व्रतोंके अतीचार भी तत्त्वार्थसूत्रमें ६० ही वर्णन किये हैं। यदि सल्लेखनाको व्रतोंमें मानकर उसके पांच अतीचार भी शामिल कर लिये जावें तब भी ६५ (१३×५) ही अतिचार होंगे। परन्तु यहांपर व्रतोंके अतीचारोंकी संख्या १७० लिखी है, यह एक आश्चर्यकी बात है। सूत्रकार भगवान् उमास्वामिके वचन इस प्रकार परस्पर या पूर्वापर विरोधको लिये हुए नहीं हो सकते। इसी प्रकारका परस्परविरुद्ध कथन और भी कई स्थानोंपर पाया जाता है। एक स्थानपर शिक्षाव्रतोंका वर्णन करते हुए लिखा है:—

* “अणुव्रतानि पंच स्युद्धिप्रकारं गुणव्रतम्।

शिक्षाव्रतानि चत्वारि सागाराणां जिनागमे” ॥ ३५८ ॥

“स्वशक्त्या क्रियते यत्र संख्याभोगोपभोगयोः ।
भोगोपभोगसंख्याख्यं तत्तृतीयं गुणव्रतम् ॥ ३३० ॥”

(उमा० श्रा०)

इस पद्यसे यह साफ प्रगट होता है कि ग्रंथकर्त्ताने, तत्त्वार्थसूत्रके विरुद्ध, भोगोपभोग परिमाण व्रतको, शिक्षाव्रतके स्थानमें तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है । परन्तु इससे पहले खुद ग्रंथकर्त्ताने ‘अनर्थदण्डविरति’ को ही तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है । और वहां दिग्विरति देशविरति तथा अनर्थदंडविरति, ऐसे तीनों गुणव्रतोंका कथन किया है । गुणव्रतोंका कथन समाप्त करनेके बाद ग्रंथकार इससे पहले आद्यके दो शिक्षाव्रतों (सामायिक—पोषधोधपवास) का स्वरूप भी दे चुके हैं । अब यह तीसरे शिक्षाव्रतके स्वरूपकथनका नम्बर था जिसको आप ‘गुणव्रत’ लिख गये । कई आचार्योंने भोगोपभोगपरिमाण व्रतको गुणव्रतोंमें माना है । मात्स्य होता है कि यह पद्य किसी ऐसे ही ग्रंथसे लिया गया है जिसमें भोगोपभोगपरिमाण व्रतको तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है और ग्रन्थकार इसमें शिक्षाव्रतका परिवर्तन करना भूल गये अथवा उन्हें इस बातका स्मरण नहीं रहा कि हम शिक्षाव्रतका वर्णन कर रहे हैं । योगशास्त्रमें भोगोपभोगपरिमाणव्रतको दूसरा गुणव्रत वर्णन किया है और उसका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

भोगोपभोगयोः संख्या शक्त्या यत्र विधीयते ।

भोगोपभोगमानं तद्वितीयिकं गुणव्रतम् ॥ ३-४ ॥

यह पद्य ऊपरके पद्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है । संभव है कि इसीपरसे ऊपरका पद्य बनाया गया हो और ‘गुणव्रतम्’ इस पदका परिवर्तन रह गया हो । इस ग्रंथके एक पद्यमें ‘लौच’का कारण भी वर्णन किया गया है । वह पद्य इस प्रकार है:—

“ अदैन्यं वैराग्यकृते कृतोऽयं केशलोचकः ।
 यतीश्वराणां वीरत्वं व्रतनैर्मल्यदीपकः ॥ ५० ॥
 (उमा० श्रा०)

इस पद्यका ग्रंथमें पूर्वोत्तरके किसी भी पद्यसे कुछ सम्बन्ध नहीं है । न कहीं इससे पहले लोचका कोई जिकर आया और न ग्रंथमें इसका कोई प्रसंग है । ऐसा असम्बद्ध और अप्रासंगिक कथन उमास्वामि महाराजका नहीं हो सकता । ग्रंथकर्त्ताने कहाँपरसे यह मजमून लिया है और किस प्रकारसे इस पद्यको यहाँ देनेमें गल्ती खाई है, ये सब बातें, जरूरत होनेपर फिर कभी प्रगट की जायँगी ।

इन सब बातोंके सिवा इस ग्रंथमें, अनेक स्थानोंपर, ऐसा कथन भी पाया जाता है जो युक्ति और आगमसे बिल्कुल विरुद्ध जान पड़ता है और इस लिये उससे और भी ज्यादा इस बातका समर्थन होता है कि यह ग्रंथ भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है । ऐसे कथनके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

(१) ग्रंथकार महाशय एक स्थानपर लिखते हैं कि जिस मंदिर पर ध्वजा नहीं है उस मंदिरमें किये हुए पूजन, होम और जपादिक सब ही विलुप्त हो जाते हैं अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता । यथा:—

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम् ।

सर्वविलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥१०७॥ (उमा० श्रा०)

इसी प्रकार दूसरे स्थानपर लिखते हैं कि जो मनुष्य फटे पुराने, खंडित या मैले वस्त्रोंको पहिनकर दान, पूजन, तप, होम या स्वाध्याय करता है तो उसका ऐसा करना निष्फल होता है । यथा:—

“ खंडिते गलिते छिन्ने मलिने चैव वाससि ।

दानं पूजा तपो होमःस्वाध्यायो विफलं भवेत् ॥ १३६ ॥

(उमा० श्रा०)

मालूम नहीं होता कि मंदिरके ऊपरकी ध्वजाका इस पूजनादिकके फलके साथ कौनसा सम्बन्ध है और जैनमतके किस गूढ़ सिद्धान्तपर ग्रंथकारका यह कथन अवलम्बित है। इसी प्रकार यह भी मालूम नहीं होता कि फटे पुराने तथा खंडित वस्त्रोंका दान, पूजन, तप और स्वाध्यायादिके फलसे कौनसा विरोध है जिसके कारण इन कार्योंका करना ही निरर्थक हो जाता है। भगवदुमास्वामिने तत्त्वार्थसूत्रमें और श्रीअकलंकदेवादिक टीकाकारोंने 'राजवार्तिकादि' ग्रंथोंमें शुभाशुभ कर्मोंके आस्रव और बन्धके कारणोंका विस्तारके साथ वर्णन किया है। परन्तु ऐसा कथन कहीं नहीं पाया जाता जिससे यह मालूम होता हो कि मंदिरकी एक ध्वजा भी भावपूर्वक किये हुए पूजनादिकके फलको उलटपुलट कर देनेमें समर्थ है। सच पूछिये तो मनुष्यके कर्मोंका फल उसके भावोंकी जाति और उनकी तरतमतापर निर्भर है। एक गरीब आदमी अपने फटे पुराने कपड़ोंको पहिने हुए ऐसे मंदिरमें जिसके शिखरपर ध्वजा भी नहीं है बड़े प्रेमके साथ परमात्माका पूजन और भजन कर रहा है और सिरसे पैर तक भक्ति रसमें डूब रहा है, वह उस मनुष्यसे अधिक पुण्य उपार्जन करता है जो अच्छे सुन्दर नवीन वस्त्रोंको पहिने हुए ध्वजावाले मन्दिरमें विना भक्ति भावके सिर्फ अपने कुलकी रीति समझता हुआ पूजनादिक करता हो। यदि ऐसा नहीं माना जाय अर्थात् यह कहा जाय कि फटे पुराने वस्त्रोंके पहिने या मन्दिरपर ध्वजा न होनेके कारण उस गरीब आदमीके उन भक्ति भावोंका कुछ भी फल नहीं है तो जैनियोंको अपनी कर्म फिलासोफीको उठाकर रख देना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। इसलिये इन दोनों पक्षोंका कथन युक्ति और आगमसे विरुद्ध है।

(२) इस ग्रंथके पूजनाध्यायमें, पुष्पमालाओंसे पूजनका विधान करते हुए, एक स्थानपर लिखा है कि चम्पक और कमलके फूलका, उसकी कली आदिको तोड़नेके द्वारा, भेद करनेसे मुनिहत्याके समान पाप लगता है। यथा:—

“ नैव पुष्पं द्विधाकुर्यान्न छिंद्यात्कलिकामपि ।

चम्पकोत्पलभेदेन यतिहत्यासमं फलम् ॥ १२७ ॥

(उमा० श्रा०)

यह कथन ब्रिलकुल जैनसिद्धान्त और जैनागमके विरुद्ध है। कहाँ तो एकेंद्रियफूलकी पखंडी आदिका तोड़ना और कहाँ मुनिकी हत्या ! दोनोंका पाप कदापि समान नहीं हो सकता। जैनशास्त्रोंमें एकेंद्रिय जीवोंके घातसे पंचेंद्रिय जीवोंके घात पर्यंत और फिर पंचेंद्रियजीवोंमें भी क्रमशः गौ, स्त्री, बालक, सामान्यमनुष्य, अविरतसम्बद्धष्टि, व्रती श्रावक और मुनिके घातसे उत्पन्न हुई पापकी मात्रा उत्तरोत्तर अधिक वर्णन की है। और इसीलिये प्रायश्चित्तसमुच्चयादि प्रायश्चित्तग्रंथोंमें भी इसी क्रमसे हिंसाका उत्तरोत्तर अधिक दंड विधान कहा गया है। कर्मप्रकृतियोंके बन्धादिकका प्ररूपण करनेवाले और ‘ तीव्रमंदज्ञाता-ज्ञातभावाधिकारणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ’ इत्यादि सूत्रोंके द्वारा कर्मास्त्रवोंकी न्यूनाधिकता दर्शानेवाले सूत्रकार महोदयका ऐसा असमंजस वचन, कि एक फूलकी पखंडी तोड़नेका पाप मुनिहत्याके समान है, कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकारके और भी बहुतसे असमंजस और आगमविरुद्ध कथन इस ग्रंथमें पाए जाते हैं जिन्हें इस समय छोड़ा जाता है। जरूरत होनेपर फिर कभी प्रगट किये जाएँगे।

जहांतक मैंने इस ग्रंथकी परीक्षा की है, मुझे ऐसा निश्चय होता है और इसमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि यह ग्रंथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामि महाराजका बनाया हुआ है। और न किसी

दूसरे आचार्यने ही इसका सम्पादन किया है। ग्रंथके शब्दों और अर्थोंपरसे, इस ग्रंथका बनानेवाला कोई मामूली, अदूरदर्शी और क्षुद्र हृदय व्यक्ति मात्तम होता है। और यह ग्रंथ १६ वीं शताब्दीके बाद १७ वीं शताब्दीके अन्तमें या उससे भी कुछ कालबाद, उस वक्त बनाया जाकर भगवान् उमास्वामीके नामसे प्रगट किया गया है जब कि तेरहपंथकी स्थापना हो चुकी थी और उसका प्राबल्य बढ़ रहा था। यह ग्रंथ क्यों बनाया गया है? इसका सूक्ष्मविवेचन फिर किसी लेख द्वारा जरूरत होनेपर, प्रगट किया जायगा। परन्तु यहाँपर इतना बतला देना जरूरी है कि इस ग्रंथमें पूजनका एक खास अध्याय है और प्रायः उसी अध्यायकी इस ग्रंथमें प्रधानता मात्तम होती है। शायद इसीलिये हलायुवजीने, अपनी भाषाटीकाके अन्तमें, इस श्रावकाचारको “पूजाप्रकरण नाम श्रावकाचार” लिखा है।

अन्तमें विद्वज्जनोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि वे इस ग्रंथकी अच्छी तरहसे परीक्षा करके मेरे इस उपर्युक्त कथनकी जाँच करें और इस विषयमें उनकी जो सम्मति स्थिर होवे उससे, कृपाकर मुझे सूचित करनेकी उदारता दिखलाएँ। यदि परीक्षासे उन्हें भी यह ग्रंथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ साबित न होवे तब उन्हें अपने उस परीक्षाफलको सर्वसाधारणपर प्रगट करनेका यत्न करना चाहिये। और इस तरहपर अपने साधारण भाइयोंका भ्रम निवारण करते हुए प्राचीन आचार्योंकी उस कीर्तिको संरक्षित रखनेमें सहायक होना चाहिये, जिसको कषायवश किसी समय कलंकित करनेका प्रयत्न किया गया है।

आशा है कि विद्वज्जन मेरे इस निवेदनपर अवश्य ध्यान देंगे और अपने कर्तव्यका पालन करेंगे। इत्यलंविज्ञेषु।

जातिसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार, देवबन्द।

शिक्षासमस्या ।

(२)

जिस समय मन बढता रहता है उस समय उसके चारों ओर एक बड़ा भारी अवकाश रहना चाहिए । यह अवकाश विश्वप्रकृतिके बीच विशाल भावसे विचित्र भावसे और सुन्दर भावसे विराजमान है । किसी तरह साढ़े नव और दश वजेके भीतर अन्न निगलकर शिक्षा देनेकी मृगशालामें पहुँचकर हाजिरी देनेसे बच्चोंकी प्रकृति किसी भी तरह सुस्थभावसे विकसित नहीं हो सकती । शिक्षा दिवालोंसे घेरकर, दरवाजोंसे रुद्धकर, दरवान बिठाकर, दण्ड या सजासे कण्टकितकर, और घण्टाद्वारा सचेत करके कैसी विलक्षण बना दी गई है ! हाय ! मानवजीवनके आरम्भमें यह क्या निरानन्दकी सृष्टिकी जाती है ! बच्चे बीजगणित न सीखकर और इतिहासकी तारीखें कण्ठ न करके माताके गर्भसे जन्म लेते हैं, इसके लिए क्या ये बेचारे अपराधी हैं ? मातृम होता है इसी अपराधके कारण इन हतभागियोंसे उनका आकाश वायु और उनका सारा आनन्द अवकाश छीनकर शिक्षा उनके लिए सब प्रकारसे शास्ति या दण्डरूप बना दी जाती है । परन्तु जग सोचो तो सही कि बच्चे अशिक्षित अवस्थामें क्यों जन्म लेते हैं ? हमारी समझमें तो वे न-जाननेसे धीरे धीरे जाननेका आनन्द पावेंगे, इसीलिए अशिक्षित होते हैं । हम अपनी असमर्थता और बर्बरताके वश यदि ज्ञानशिक्षाको आनन्दजनक न बना सकें, तो न सही, पर चेष्टा करके, जान बूझकर अतिशय निष्ठुरतापूर्वक निरपराधी बच्चोंके विद्यालयोंको कारागार (जेलखाने) तो न बना डालें ! बच्चोंकी शिक्षाको विश्वप्रकृतिके उदार रमणीय अवकाशसे होकर उन्मेषित करना ही विधाताका अभिप्राय था—इस अभि-

प्रायको हम जितना ही व्यर्थ करते हैं उतना ही अधिक वह व्यर्थ होता है। मृगशास्त्रकी दावाले तोड़ डालो,—मातृगर्भके दश महीनोंमें बच्चे पण्डित नहीं हुए, इस अपराधपर उन बेचारोंको सपरिश्रम कारागारका दण्ड मत दो, उनपर दया करो।

इसीसे हम कहते हैं कि शिक्षाके लिए इस समय भी हमें वनोंका प्रयोजन है और गुरुगृह भी हमें चाहिए। वन हमारे सजीव निवास-स्थान हैं और गुरु हमारे सहृदय शिक्षक हैं। आज भी हमें उन वनोंमें और गुरुगृहमें अपने बालकोंको ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक रखकर उनकी शिक्षा पूर्ण करनी होगी। कालसे हमारी अवस्थाओंमें चाहे जेतने ही परिवर्तन क्यों न हुआ करें परन्तु इस शिक्षानियमकी उपयोगितामें कुछ भी कमी नहीं आ सकती, कारण यह नियम मानवचरित्रके चिरस्थायी सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है।

अतएव, यदि हम आदर्शविद्यालय स्थापित करना चाहें तो हमें मनुष्योंकी वस्तीसे दूर, निर्जन स्थानमें, खुले हुए आकाश और विस्तृत भूमिपर झाड़ू पेड़ोंके बीच उनकी व्यवस्था करनी चाहिए। वहाँ अध्यापकगण एकान्तमें पठनपाठनमें नियुक्त रहेंगे और छात्रगण उस ज्ञानचर्चाके यज्ञक्षेत्रमें ही बढ़ा करेंगे।

यदि वन सके तो इस विद्यालयके साथ थोड़ीसी फसलकी जमीन भी रहनी चाहिए;—इस जमीनसे विद्यालयके लिए प्रयोजनीय खाद्य-सामग्री संग्रह की जायगी और छात्र खेतीके काममें सहायता करेंगे। दूध वी आदि चीजोंके लिये गाय भैंस रहेंगी और छात्रोंको गोपालन करना होगा। जिस समय बालक पढ़ने लिखनेसे छुट्टी पावेंगे, उस विश्रामकालमें वे अपने हाथसे बाग लगावेंगे, झाड़ोंके चारों ओर खड़े खोदेंगे, उनमें जल संचेंगे और बागकी रक्षाके लिए बाढ़ लगावेंगे।

इस तरह वे प्रकृतिके साथ केवल भावका ही नहीं, कामका सम्बन्ध भी जारी रखेंगे।

अनुकूल ऋतुओंमें बड़े बड़े छायादार वृक्षोंके नीचे छात्रोंकी क्लासें बैठेंगी। उनकी शिक्षाका कुछ अंश अध्यापकोंके साथ वृक्षोंके नीचे घूमते घूमते समाप्त होगा और सन्ध्याका अवकाशकाल वे नक्षत्रोंकी पहचान करनेमें, सङ्गीतचर्चामें, पुराणकथाओंमें और इतिहासकी कहानियां सुननेमें व्यतीत करेंगे।

कोई अपराध बन जानेपर छात्र हमारी प्राचीन पद्धतिके अनुसार प्रायश्चित्त करेंगे। शास्ति अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्तमें बहुत बड़ा अन्तर है। दूसरेके द्वारा अपराधका प्रतिफल पाना शास्ति है और अपने ही द्वारा अपराधका संशोधन करना—उससे मुक्त होना प्रायश्चित्त है। छात्रोंको इस प्रकारकी शिक्षा शुरूसे ही मिलना चाहिए कि दण्डस्वीकार करना खुदका ही कर्तव्य है—उसके स्वीकार किये बिना हृदयकी ग्लानि दूर नहीं होती। दूसरेके द्वारा आपको दण्डित करना मनुष्योचित कार्य नहीं हो सकता।

यदि आप लोग क्षमा करें तो इस मौकेपर साहस करके मैं एक बात और कह दूँ। इस आदर्शविद्यालयमें बेंच टेबिल कुर्सी और चौकियोंकी जरूरत नहीं। मैं यह बात अँगरेजी चीजोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिए नहीं कहता हूँ। नहीं, मेरा वक्तव्य यह है कि हमें अपने विद्यालयमें अनावश्यकताकी आवश्यकता न बढ़ने देनेका एक आदर्श सब तरह स्पष्ट कर रखना होगा। टेबिल, कुर्सी, बेंच आदि-चीजें मनुष्यको हर वक्त नहीं मिल सकतीं; किन्तु भूमितल एक ऐसी चीज है कि उसे कोई कभी छीन नहीं ले सकता। इसके विरुद्ध कुर्सी टेबिलें अवश्य ऐसी हैं कि वे हमारे भूमितलको छीन लेती हैं। क्योंकि

अभ्यास पढ़ जानेपर हमारी ऐसी दशा हो जाती है कि यदि कभी भूमितलपर बैठनेके लिए हमें ल्याचार होना पड़ता है तो न तो हमें आराम मिलता है और न सुबिधा ही मालूम पड़ती है। विचार करके देखा जाय तो यह एक बड़ी भारी हानि है। हमारा देश शीतप्रधान देश नहीं है, हमारा पहनाव ओढाव ऐसा नहीं है कि हम नीचे न बैठ सकें, तब परदेशोंके समान अभ्यास डालके हम असबाबकी बहु-लतासे अपना कष्ट क्यों बढ़ावें? हम जितना ही अनावश्यकको अत्यावश्यक बनावेंगे उतना ही हमारी शक्तिका अपव्यय होगा। इसके सिवा धनी यूरोपके समान हमारी पूँजी नहीं है; उसके लिए जो बिलकुल सहज है हमारे लिए वही भार रूप है। हम ज्यों ही किसी अच्छे कार्यका प्रारंभ करते हैं और उसके लिए आवश्यक इमारत, असबाब, फरनीचर आदिका हिसाब लगाते हैं त्यों ही हमारी आँखोंके आगे अँधेरा छा जाता है। क्योंकि इस हिसाबमें अनावश्यकताका उपद्रव रुपयेमें बारह आने होता है। हममेंसे कोई साहस करके नहीं कह सकता कि हम मिट्टीके साधे घरमें काम आरंभ करेंगे और धरतीमें आसन बिछाकर सभा करेंगे। यदि हम यह बात जोरसे कह सकें और कर सकें तो हमारा आधेसे अधिक वजन उतर जाय और काममें कुछ अधिक तारतम्य भी न हो। परन्तु जिस देशमें शक्तिकी सीमा नहीं है, जिस देशमें धन कौने कौनेमें भरकर उछला पड़ता है, उस धनी यूरोपका आदर्श अपने सब कामोंमें बनाये बिना हमारी लज्जा दूर नहीं होती—हमारी कल्पना तृप्त नहीं होती। इससे हमारी क्षुद्र शक्तिका बहुत बड़ा भाग आयोजनोंमें—तैयारियोंमें ही निःशेष हो जाता है, असली चीजको हम खुराक ही नहीं जुटा पाते। हम जितने दिन पट्टियोंपर खड़िया पोतकर हाथ घसीटते रहे, तब तक तो पाठशालायें स्थापन

करनेका हमारा विचार ही नहीं था, अब बाजारोंमें स्लेट पेंसिलोंका प्रादुर्भाव हो गया है परन्तु पाठशाला स्थापित करना मुश्किल हो गया है। सब ही विषयोंमें यह बात देखी जाती है। पहले आयोजन कम थे, सामाजिकता अधिक थी; अब आयोजन बढ़ चले हैं, और सामाजिकतामें घटा आ रहा है। हमारे देशमें एक दिन था, जब हम असबाब आडम्बरको ऐश्वर्य कहते थे किन्तु सम्यता नहीं कहते थे; कारण उस समय देशमें जो सम्यताके भाण्डारी थे उनके भाण्डारमें असबाबकी अधिकता नहीं थी। वे दारिद्र्यको कल्याणमय बना करके सारे देशको सुस्थ खिग्ध रखते थे। कमसे कम शिक्षाके दिनोंमें यदि हम इस आदर्शसे मनुष्य हो सकें—तो और चाहे कुछ न हो हम अपने हाथमें कितनी ही क्षमता या सामर्थ्य पा सकेंगे—मिट्टीमें बैठ सकनेकी क्षमता, मोटा पहननेकी मोटा खानेकी क्षमता, यथासंभव थोड़े आयोजनमें यथासंभव अधिक काम चलानेकी क्षमता—ये सब मामूली क्षमता नहीं हैं और ये साधनोंकी—अभ्यासकी अपेक्षा ग्वती हैं। सुगमता, सरलता, सहजता ही यथार्थ सम्यता है—इसके विरुद्ध आयोजनोंकी जटिलता एक प्रकारकी वर्धरता है। वास्तवमें वह परीनेमे तरवतर अक्षमताका स्तूपाकार जंजाल है। इस प्रकारकी शिक्षा विद्यालयोंमें शिशुकालमे ही मिलना चाहिए और सो भी निष्फल उपदेशोंद्वारा नहीं, प्रत्यक्ष दृष्टान्तों द्वारा कि—थोड़ी बहुत जड़ वस्तुओंके अभावमे मनुष्यत्वका सन्मान नष्ट नहीं होता वरन् बहुधा स्थलोंमें स्वाभाविक दीमिमे उज्ज्वल हो उठता है। हमें इस बिलकुल सीधीसादी बातको सब तरह साक्षात् भावसे बालकोंके सामने स्वाभाविक कर देना होगा। यदि यह शिक्षा न मिलेगी तो हमारे बालक केवल अपने हाथोंपावोंका, और घरकी मिट्टीका ही अनादर न करेंगे किन्तु अपने पिता पितामहोंको

घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे और प्राचीन भारतवर्षकी साधनाका माहात्म्य यथार्थरूपसे अनुभव न कर सकेंगे।

यहाँ शंका उपस्थित होगी कि यदि तुम ब्राह्मी तड़कभड़क चाक-चिक्यका आदर नहीं करना चाहते तो फिर तुम्हें भीतरी वस्तुको विशेष भावसे मूल्यवान् बनाना होगा—सो क्या उस मूल्यके देनेकी शक्ति तुममें है? अर्थात् क्या तुम उस बहुमूल्य आदर्श शिक्षाकी व्यवस्था कर सकते हो? गुरुगृह स्थापित करते ही पहले गुरुओंकी आवश्यकता होगी। परन्तु इसमें यह बड़ी भारी कठिनाई है कि शिक्षक या मास्टर तो अखबारोंमें नोटिस दे देनेसे ही मिल जाते हैं पर गुरु तो फरमायश देनेसे भी नहीं पाये जा सकते।

इसका समाधान यह है—यह सच है कि हमारी जो कुछ सङ्गति है—पूँजी है उसकी अपेक्षा अधिकका दावा हम नहीं कर सकते। अत्यन्त आवश्यकता होनेपर भी सहसा अपनी पाठशालाओंमें गुरु महाशयोंके आसनपर याज्ञवल्क्य ऋषिको ला बिठाना हमारे हाथकी बात नहीं है। किन्तु यह बात भी विवेचना करके देखनी होगी कि हमारी जो सङ्गति या पूँजी है अवस्थादोषसे यदि हम उसका पूरा दावा न करेंगे तो अपना सारा मूलधन भी न बचा सकेंगे। इस तरहकी घटनायें अकसर घटा करती हैं। डाँकके टिकिट लिफाफेपर चिपकानेके लिए ही यदि हम पानीके घड़ेका व्यवहार करें तो उस घड़ेका अधिकांश पानी अनावश्यक होगा; पर यदि हम स्नान करें तो उस घड़ेका जल सबका सब खाली किया जा सकता है;— अर्थात् एक ही घड़ेकी उपयोगिता व्यवहार करनेके ढँगोंसे कम बढ़ हो जाती है। ठीक इसी तरह हम जिन्हें स्कूलके शिक्षक बनाते हैं उनका हम इस ढँगसे व्यवहार करते हैं कि उनके हृदय मनोंका

बहुत ही कम अंश काममें लगता है—वे कलके समान काम किया करते हैं । फोनोग्राफ यन्त्रके साथ यदि हम एक बेत और थोड़ासा मस्तक जोड़ दें तो बस वह स्कूलका शिक्षक बन सकता है । किन्तु यदि इसी शिक्षकको हम गुरुके आसनपर बिठा दें तो स्वभावसे ही उसके हृदय मनकी शक्ति समग्र भावसे शिष्योंकी ओर दौड़ेगी । यह सच है कि उसकी जितनी शक्ति है उससे अधिक वह शिष्योंको न दे सकेगा किन्तु उसकी अपेक्षा कम देना भी उसके लिए लज्जाकर होगा । जबतक एक पक्ष यथार्थ भावसे दावा न करेगा तबतक दूसरे पक्षमें सम्पूर्ण शक्तिका उद्घोषन न होगा । आज स्कूलके शिक्षकोंके रूपमें देशकी जो शक्ति काम कर रही है, देश यदि सच्चे हृदयसे प्रार्थना करे तो गुरुरूपमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति काम करेगी ।

आजकल प्रयोजनके नियमसे शिक्षक छात्रोंके पास आते हैं—शिक्षक गरजी बन गये हैं; परन्तु स्वाभाविक नियमसे शिष्योंको गुरुके पास जाना चाहिए—छात्रोंकी गरज होनी चाहिए । अब शिक्षक एक तरहके दूकानदार हैं और विद्या पढ़ाना उनका व्यवसाय है । वे ग्राहकों या खरीददारोंकी खोजमें फिरा करते हैं । दूकानदारके यहाँसे लोग चीज खरीद सकते हैं, परन्तु उसकी विक्रेय चीजोंमें स्नेह, श्रद्धा, निष्ठा आदि हृदयकी चीजें भी होंगी, इस प्रकारकी आशा नहीं की जा सकती । इसी कारण शिक्षक वेतन (तनखाह) लेते हैं और विद्याको बेच देते हैं—और यहीं दूकानदार और ग्राहकके समान शिक्षक और छात्रोंका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । इस प्रकारकी प्रतिकूल अवस्थामें भी बहुतसे शिक्षक लेन देनका सम्बन्ध छोड़ देते हैं । हमारे शिक्षक जब यह समझने लेंगे कि हम गुरुके

आसनपर बैठे हैं; और हमें अपने जीवनके द्वारा छात्रोंमें जीवनसञ्चार करना है, अपने ज्ञानके द्वारा छात्रोंमें ज्ञानकी बत्ती जलानी है, अपने स्नेहके द्वारा बालकोंका कल्याणसाधन करना है, तब ही वे गौरवान्वित हो सकेंगे—तब वे ऐसी चीजका दान करनेको तैयार होंगे जो पण्यद्रव्य नहीं है, जो मूल्य देकर नहीं पाई जा सकती और तब ही वे छात्रोंके निकट शासनके द्वारा नहीं किन्तु धर्मके विधान तथा स्वभावके नियमसे भाक्ति करने योग्य—पूज्य बन सकेंगे। वे जीविकाके अनुरोधसे वेतन लेनेपर भी बदलेमें उमकी अपेक्षा बहुत अधिक देकर अपने कर्तव्यको महिमान्वित कर सकेंगे। यह बात किसीसे छुपी नहीं है कि अभी थोड़े दिन पहले जब देशके विद्यालयोंमें राजचक्रकी शनिदृष्टि पड़ी थी, तब ब्रीसों प्रवीन और नवीन शिक्षकोंने जीविका लुब्ध शिक्षकवृत्तिकी कलङ्ककालिमा कितने निर्लज्ज भावसे समस्त देशके सामने प्रकाशित की थी। यदि वे भारतके प्राचीन गुरुओंके आसनपर बैठे होते तो पदवृद्धिके मोहसे और हृदयके अभ्यासके वशसे छोटे २ बच्चोंपर निगरानी रखनेके लिए कनस्टेबल बिठाकर अपने व्यवसायको इस तरह घृणित नहीं कर सकते। अब प्रश्न यह है कि शिक्षारूपी दूकानदारीकी नीचतासे क्या हम देशके शिक्षकोंको और छात्रोंको नहीं बचा सकते ?

किन्तु हमारा इन सब विस्तृत आलोचनाओंमें प्रवृत्त होना जान पड़ता है कि व्यर्थ जा रहा है—मादूम होता है बहुतोंको हमारी इस शिक्षाप्रणालीकी मूल बातमें ही आपत्ति है। अर्थात् वे लिखना पढ़ना सिखलानेके लिए अपने बालकोंको दूर भेजना हितकारी नहीं समझते।

इस विषयमें हमारा प्रथम वक्तव्य यह है कि हम आजकल जिसको लिखना पढ़ना समझते हैं उसके लिए तो केवल इतना ही काफी है कि अपने मुहल्लेकी किसी गलीमें कोई एक सुभीतेका स्कूल देख लिया

और उसके साथ बहुत हुआ तो एक प्राइवेट ट्यूटर भी रख लिया जो शिक्षा इस उद्देश्यको सामने रखकर दी जाती है कि—“लिखन पढ़ना सीखे जोई, गाड़ी घोड़ा पावे सोई।” वह शिक्षा ही नहीं इस प्रकारकी शिक्षा मानवसन्तानको अतिशय दीन और कृपण बनानेवाली अतएव सर्वथा अयोग्य है।

दूसरा वक्तव्य यह है कि, ‘शिक्षाके लिए बालकोंको घरसे दूर भेजना उचित नहीं है’ इस बातको हम तब मान सकते थे जब हमारे घर वैसे होते जैसे कि होने चाहिए थे। कुम्हार, लुहार, बढई, जुलाहे आदि शिल्पकार अपने बच्चोंको अपने पास रखकर ही मनुष्य बना लेते हैं और वे उन्हीं जैसा काम करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि वे जितनी शिक्षा देना चाहते हैं वह घर रखके ही अच्छी तरहसे दी जा सकती है—उनका घर उसके योग्य होता है। पर शिक्षाका आदर्श यदि इससे कुछ और उन्नत हो तो बालकोंको स्कूल भेजना होगा। तब यह कोई न कहेगा कि मा बापके पास शिखाना ही सर्वापेक्षा अच्छा है; क्योंकि अनेक कारणोंसे ऐसा होना संभव नहीं। शिक्षाके आदर्शको यदि और भी ऊंचा उठाना चाहें, यदि परीक्षा फल-लोलुप पुस्तक शिक्षाकी ओर ही हम न देखें, यदि सर्वाङ्गीण मनुष्यत्वकी दीवाल खड़ी करनेको ही हम शिक्षाका लक्ष्य निश्चय करें, तो उसकी व्यवस्था न तो घर हीमें हो सकेगी—और न स्कूलोंमें ही हो सकेगी।

संसारमें कोई वणिक है, कोई वकील है, कोई धनी जमींदार है और कोई कुछ और है। इन सबहीके घरकी आव हवा स्वतन्त्र या जुदा जुदा तरहकी है और इसलिए इनके घरकी बच्चोंपर छुटपन हीसे जुदा जुदा तरहकी छाप लग जाती है।

जीवनयात्राकी विचित्रताके कारण मनुष्यमें अपने आप जो एक विशेषत्व घटित होता है वह अनिवार्य है और इस प्रकार एक एक

व्यवसायका विशेष आकार प्रकार लेकर मनुष्य जुदा जुदा कोठोंमें विभक्त हो जाता है; किन्तु जब बालक संसारक्षेत्रमें पैर रखते हैं तब उसके पहले उनका उनके पालनपोषण कर्त्ताओंके या अभिभावकोंके संचिमें ढलना उनके लिए कल्याणकारी नहीं है।

उदाहरणके लिये एक धनीके लड़कोंको देखिए। यह ठीक है कि धनीके घरमें लड़के जन्म लेते हैं किन्तु वे कोई ऐसी विशेषता लेकर जन्म नहीं लेते कि जिससे मान्द्रूम हो कि वे धनीके लड़के हैं। धनीके लड़के और गरीबके लड़केमें उस समय कोई विशेष प्रभेद नहीं होता। जन्म होनेके दूसरे दिनसे मनुष्य उस प्रभेदको अपने हाथों गढ़ता है।

ऐसी अवस्थामें मावापके लिए उचित था कि वे पहले लड़कोंके साधारण मनुष्यत्वको पक्का करके उसके बाद उन्हें आवश्यकतानुसार धनीकी सन्तान बनाते। किन्तु ऐसा नहीं होता, वे सब प्रकारसे मानव सन्तान बननेके पहले ही धनीकी सन्तान बन जाते हैं—इससे दुर्लभ मानव जन्मकी बहुतसी बातें उनके भाग्यमें वाद पड़ जाती हैं—जीवन-धारणके अनेक रसास्वादोंकी क्षमता ही उनकी नष्ट हो जाती है। पहले तो पिंजरेके बद्धपक्ष पक्षाके समान धनिक पुत्रको उसके मावाप हाथ पैरोंके रहते हुए भी पंगु बना डालते हैं। वह चल नहीं सकता, उसके लिए गाड़ी चाहिए; विलकुल मामूली बोझा उठानेकी शक्ति नहीं रहती, कुली चाहिए; अपने काम कर सकनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, चाकर चाहिए। केवल शारीरिक शक्तिके अभावसे ही ऐसा होता हो, सो नहीं है,—लोकलज्जाके मारे उस हतभागेको सुस्थ तथा सुदृढ अङ्ग प्रत्यङ्ग होने पर भी पक्षाघात (लकवा) ग्रस्त होना पड़ता है। जो सहज है वह उसके लिए कष्टकर है, और जो स्वाभाविक है वह उसके लिए लज्जाकर हो जाता है। समाजके लोगोंके मुँहकी ओर

देखकर—वे हमारे कामको अनुचित न कहने लगे इस खयालसे उसे जिन अनावश्यक शासनोंमें कैद होना पड़ता है उनसे वह सहज मनुष्यके बहुतसे अधिकारोंसे वञ्चित हो जाता है। पीछे कहीं उसे कोई धनी न समझे, इतनी सी भी लज्जा वह नहीं सह सकता, इसके लिये उसे पर्वततुल्य भार वहन करना पड़ता है और इसी भारके कारण वह पृथिवीमें पैर पैर पर दबा जाता है। उसको कर्तव्य करना हो तो भी इस सारे बोझको उठा करके करना होगा, आराम करना हो तो भी इस भारको लादकर करना होगा—भ्रमण करना हो तो भी इस सब भारको साथ २ खींचते हुए करना होगा। यह एक बिलकुल सीधी और सत्य बात है कि सुख मनसे सम्बंध रखता है—आयोजनों या आडम्बरोसे नहीं। परन्तु यह सरल सत्य भी वह जानने नहीं पाता—इसे हर तरहसे भुलकर वह हजारों जड़ पदार्थोंका दासानुदास बना दिया जाता है। अपनी मामूली जरूरतोंको वह इतना बढ़ा डालता है कि फिर उसके लिए त्याग स्वीकार करना असाध्य हो जाता है और कष्ट स्वीकार करना असंभव हो जाता है। जगतमें इतना बड़ा कैदी और इतना बड़ा लँगड़ा शायद ही और कोई हो। इतनेपर भी क्या हमें यह कहना होगा कि—ये सब पालन पोषण कर्ता मा-बाप जो कृत्रिम असमर्थताको गर्वकी सामग्री बनाकर खड़ी कर देते हैं और पृथिवीके सुन्दर शस्यक्षेत्रोंको काँटेदार झाड़ोंसे छा डालते हैं—अपनी सन्तानके सच्चे हितैषी हैं? जो जवान होकर अपनी इच्छासे विलासितामें मग्न हो जाते हैं उन्हें तो कोई नहीं रोक सकता किन्तु बच्चे, जो धूल मिट्टीसे घृणा नहीं करते, जो धूप, वर्षा और वायुको चाहते हैं, जो सजधज करानेमें कष्ट मानते हैं, अपनी सारी इन्द्रियोंकी चालना करके जगतको प्रत्यक्ष भावसे परीक्षा करके

देखनेमें ही जिन्हें मुख मान्द्रम होता है, अपने स्वभावके अनुसार चलनेमें जिन्हें लज्जा, संकोच, अभिमान आदि कुछ भी नहीं होता, वे जान बूझकर बिगाड़े जाते हैं, चिरकालके लिए अकर्मण्य बना दिये जाते हैं, यह बड़े ही दुःखका विषय है। भगवान्, ऐसे पितामाताओंके हाथसे इन निरपराध बच्चोंकी रक्षा करो, इनपर दया करो।

हम जानते हैं कि बहुतसे घरोंमें बालक बालिका साहब बनाये जा रहे हैं। वे आयाओं या दाइयोंके हाथोंसे मनुष्य बनते हैं, विकृत वेदंगी हिन्दुस्थानी सीखते हैं, अपनी भातृभाषा हिन्दी भूल जाते हैं और भारतवासियोंके बच्चोंके लिए अपने समाजसे जिन सैंकड़ों हजारों भावोंके द्वारा निरन्तर ही विचित्र रसोंका आकर्षण करके पुष्ट होना स्वाभाविक था, उन सब स्वजातीय नाड़ियोंके सम्बन्धसे वे जुदा हो जाते हैं और इधर अँगरेज़ी समाजके साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं रहता। अर्थात् वे अरण्यसे उखाड़े जा कर विलायती टीनके ट्योंमें बड़े होते हैं। हमने अपने कानोंसे सुना है इस श्रेणीका एक लड़का दूरसे अपने कई देशीय भावापन्न रिश्तेदारोंको देखकर अपनी मासे बोला था—“Mamma, mamma, look, lot of Babus are coming” एक भारतवासी लड़केकी इससे अधिक दुर्गति और क्या हो सकती है? बड़े होनेपर स्वाधीन रुचि और प्रवृत्तिके वश जो साहबी चाल चलना चाहें वे भले ही चलें, किन्तु उनके बचपनमें जो सब मात्राप बहुत अपव्यय और बहुतसी अपचेष्टासे सन्तानोंको सारे समाजसे बाहर करके स्वदेशके लिये अयोग्य और विदेशके लिए अप्राह्य बना डालते हैं, सन्तानोंको कुछ समयके लिए केवल अपने उपार्जनके बिलकुल अनिश्चित आश्रयके भीतर लपेट रखकर भविष्यतकी दुर्गतिके लिए जान बुझकर तैयार करते हैं, उन सब अभि-

भावकोंके निकट न रहकर बालक यदि दूर रखे जावें तो क्या कोई बड़ी भारी दुश्चिन्ताका कारण हो जायगा ?

हमने जो ऊपर एक दृष्टान्त दिया है उसका एक विशेष कारण है। साहबीपनका जिन्हें अभ्यास नहीं है, यह दृष्टांत उनके चित्तोंपर बड़े जोरसे चोट पहुँचावेगा। वे सचमुच ही मन-ही-मन सोचेंगे कि लोग यह इतनी सी मामूली बात क्यों नहीं समझते—वे सारा भविष्यत् भूलकर केवल अपने कितने ही विकृत अभ्यासोंकी अंधताके वश बच्चोंका इस प्रकार सर्वनाश करनेके लिए क्यों तत्पर हो जाते हैं।

किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जिन्हें साहबीपनका अभ्यास हो रहा है, वे यह सब काम बहुत ही सहज भावसे किया करते हैं। यह बात कभी उनके मनमें ही नहीं आ सकती कि हम सन्तानको किसी दूषित अभ्यासमें डाल रहे हैं। क्योंकि हमारे निजके भीतर जो सब खास खास विकृतियाँ होती हैं उनके सम्बन्धमें हम एक तरहसे अचेतन ही रहते हैं—उन्होंने हमें अपनी मुड़ीमें इस तरह कर रक्खा है कि उनसे और किसीका अनिष्ट तथा असुविधा होनेपर भी हम उनकी ओरसे उदासीन रहते हैं—यह नहीं सोचते कि इनसे दूसरोंको हानि पहुँच रही है। हम समझते हैं कि परिवारके भीतर क्रोध, द्वेष, अन्याय, पक्षपात, विवाद, विरोध, ग्लानि, बुरे अभ्यास, कुसंस्कार आदि अनेक बुरी बातोंका प्रादुर्भाव होनेपर भी उस परिवारसे दूर रहना ही बालकोंके लिये सबसे बड़ी विपत्ति है। यह बात कभी हमारे मनमें उठती ही नहीं कि हम जिसके भीतर रहकर मनुष्य हुए हैं उस (परिवार) के भीतर और किसीके मनुष्य बननेमें कुछ क्षति है या नहीं। किन्तु यदि मनुष्य बनानेका आदर्श सच हो, यदि बालकोंको अपने ही जैसा काम चलाऊ आदमी बनानेको हम यथेष्ट

न समझते हों तो यह बात हमारे मनमें जरूर उठेगी कि बालकोंको शिक्षाके समय ऐसी जगह रखना हमारा कर्तव्य है कि जहाँ वे स्वभावके नियमानुसार विश्वप्रकृतिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखकर ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक गुरुओंके सहवासमें ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बन सकें।

भ्रूणको गर्भके भीतर और बीजको मिट्टीके भीतर अपने उपयुक्त खाद्यसे परिवृत होकर गुप्त रहना पड़ता है। उस समय रात दिन उन दोनोंका एक मात्र काम यही रहता है कि खाद्यको खींचकर आपको आकाशके लिए और प्रकाशके लिए तैयार करते रहना। उस समय वे आहरण नहीं करते, चारों ओरसे शोषण करते हैं। प्रकृति उन्हें अनुकूल अन्तरालके भीतर आहार देकर लपेट रखती है—बाहरके अनेक आघात और अपघात उनपर चोट नहीं पहुँचा सकते और नाना आकर्षणोंमें उनकी शक्ति विभक्त नहीं हो पड़ती।

बालकोंका शिक्षा समय भी उनके लिए इसी प्रकारकी मानसिक भ्रूण-अवस्था है। इस समय वे ज्ञानके एक सजीव वेष्टनके बीच रात दिन मनकी खुराकके भीतर ही बात करके बाहरकी सारी विभ्रान्तियोंसे दूर गुप्त रूपसे अपना समय व्यतीत करते हैं, और यही होना भी चाहिए—यह स्वाभाविक विधान इस समय चारों ओरकी सभी बातें उनके अनुकूल होना चाहिए,—जिससे उनके मनका सबसे आवश्यक कार्य होता रहे अर्थात् वे जानकर और न जानकर खाद्यशोषण करते रहें, शक्तिसंचय करते रहें और आपको परिपुष्ट करते रहें।

संसार कार्यक्षेत्र है और नाना प्रवृत्तियोंकी लीलाभूमि है—उसमें ऐसी अनुकूल अवस्थाका मिलना बहुत ही कठिन है जिससे बालक शिक्षाकालमें शक्तिलाभ और परिपूर्ण जीवनकी मूल पूँजी संग्रह कर सकें। शिक्षा समाप्त होनेपर गृहस्थ होनेकी वास्तविक क्षमता उनमें

उत्पन्न होगी—किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जो संसारके समस्त प्रवृत्ति-संघातोंके बीच रहकर यथेच्छ मनुष्य बन जाते हैं, उन्हें गृहस्थ होनेके योग्य मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता—जमींदार बनाया जा सकता है, व्यवसायी बनाया जा सकता है परन्तु मनुष्य बनना बहुत ही कठिन है। हमारे देशमें एक समय गृहधर्मका आदर्श बहुत ही ऊँचा था, इसीलिए समाजमें तीनों वर्णोंको संसारमें प्रवेश करनेके पहले ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा आपको तैयार करनेका उपदेश और व्यवस्था थी। यह आदर्श बहुत समयसे नीचे गिर गया है और उसके स्थानपर हमने अब तक और कोई महत् आदर्श ग्रहण नहीं किया, इसीसे हम आज ऋक, सरिश्तेदार, दारोगा, डिपुटी मजिस्ट्रेट बनकर ही सन्तुष्ट हैं—इससे अधिक बननेको यद्यपि हम बुरा नहीं समझते तथापि बहुत समझते हैं।

किन्तु इससे बहुत अधिक भी बहुत नहीं है। हम यह बात केवल हिन्दुओंकी ओरसे नहीं कहते हैं—नहीं, किसी देश और किसी देश समाजमें भी यह बहुत नहीं है। दूसरे देशोंमें ठीक इसी प्रकारकी शिक्षाप्रणाली प्रचलित नहीं की गई और वहाँके लोग युद्धोंमें लड़ते हैं, वाणिज्य करते हैं, टेलीग्राफके तार खटखटाते हैं, रेलगाड़ीके एञ्जिन चलाते हैं—यह देखकर हम भूले हैं;—और यह भूल ऐसी है कि किसी सभामें एकाध प्रबन्धकी आलोचना करनेसे मिट जायगी ऐसी आशा नहीं की जा सकती। इसलिए आशङ्का होती है कि आज हम 'जातीय' शिक्षापरिपत्की रचना करनेके समय अपने देश और अपने इतिहासको छोड़कर जहाँ तहाँ उदाहरण खोजनेके लिए घूम फिरकर कहीं और भी एक संचेमें ढला हुआ कलका स्कूल न खोल बैठें। हम प्रकृतिका विश्वास नहीं करते, मनुष्यके प्रति भरोसा नहीं रखते, इसलिए कलके बिना हमारी गति नहीं है। हमने मनमें

निश्चय कर रक्खा है कि नीतिपाठोंकी कल चलाते ही मनुष्य साधु बन जायँगे और पुस्तकें पढ़ानेका बड़ा फंदा डालते ही मनुष्यका तृतीय चक्षु जो ज्ञाननेत्र है वह आप ही उघड़ पड़ेगा !

इसमें सन्देह नहीं कि प्रचलित प्रणालीके एक स्कूल खोलनेकी अपेक्षा ज्ञानदानका कोई उपयोगी आश्रम स्थापित करना बहुत ही कठिन है । किन्तु स्मरण रखिए कि इस कठिनको सहज करना ही भारतवर्षका आवश्यक कार्य होगा । क्योंकि, हमारी कल्पनामेंसे यह आश्रमका आदर्श अभी तक लुप्त नहीं हुआ है और साथ ही यूरोपकी नाना विद्याओंसे भी हम परिचित हो गये हैं । विद्यालाभ और ज्ञानलाभकी प्रणालीमें हमें सामञ्जस्य स्थापित करना होगा । यह भी यदि इससे न हो सका तो समझ लो कि केवल नकलकी ओर दृष्टि रखकर हम सब तरह व्यर्थ हो जायँगे—किसी कामके न रहेंगे । अधिकारलाभ करनेको जाते ही हम दूसरोंके आगे हाथ फैलाते हैं और नवीन गढ़नेको जाते ही हम नकल करके बैठ जाते हैं । अपनी शक्ति और अपने मनकी और देशकी प्रकृति और देशके यथार्थ प्रयोजनकी ओर हम ताकते भी नहीं हैं—ताकनेका साहस भी नहीं होता । जिस शिक्षाकी कृपासे हमारी यह दशा हो रही है उसी शिक्षाको ही एक नया नाम देकर स्थापन कर देनेसे ही वह नये फल देने लगेगी, इस प्रकार आशा करके एक और नई निराशाके मुखमें प्रवेश करनेकी अब हमारी प्रवृत्ति तो नहीं होती । यह बात हमें याद रखनी होगी कि जहाँ चन्देके रुपये मूसलधारके समान आ पड़ते हैं शिक्षाका वहीं अच्छा जमाव होता है, ऐसा विश्वास न कर बैठना चाहिए । क्योंकि मनुष्यत्व रूपोंसे नहीं खरीदा जा सकता । जहाँ कमेटीके नियमोंकी धारा निरन्तर बरसती रहती है, शिक्षाकल्प-

लता वहीं जल्दीसे बढ़ उठती है, यह भी कोई बात नहीं है। क्योंकि केवल नियमावली अच्छी होनेपर भी वह मनुष्यके मनको खाय नहीं दे सकती। अनेकानेक विषयोंके पढ़ानेकी व्यवथा करनेसे ही शिक्षा अधिक और अच्छी होने लगी, ऐसा समझना भी भूल है क्योंकि मनुष्य जो बनता है सो “ न मेधाया न बहुना श्रुतेन ।” जहाँ एकान्तमें तपस्या होती है, वहीं हम सीख सकते हैं; जहाँ गुरुरूपसे त्याग होता है, जहाँ एकान्त अभ्यास या साधना होती है, वहीं हम शक्ति बढ़ा सकते हैं, जहाँ सम्पूर्ण भावसे दान होता है वहीं सम्पूर्ण भावसे ग्रहण भी संभव हो सकता है; जहाँ अध्यापकगण ज्ञानकी चर्चामें स्वयं प्रवृत्त रहते हैं वहींपर छात्रगण विद्याके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं; बाहर विश्वप्रवृत्तिका आविर्भाव जहाँ बिना रुकावटके होता है, भीतर वहींपर मन सम्पूर्ण विकसित हो सकता है; ब्रह्मचर्यकी साधनामें जहाँ चरित्र सुस्थ और आत्मवश होता है, धर्मशिक्षा वहाँ ही सरल और स्वाभाविक होती है; और जहाँपर केवल पुस्तक और मास्टर, सेनेट और सिंडिकेट, ईंटोंके कोठे और काठका फर्नीचर है, वहाँ हम जितने बड़े आज हो उठे हैं, उतने ही बड़े होकर कल भी बाहर होंगे। *

* श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी शिक्षानिबन्धावलीके एक बंगला लेखका अनुवाद ।

वन-विहंगम ।

(१)

वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्वमें,

एक कपोत कपोती कहीं ।

दिन-रात न एकको दूसरा छोड़ता,

ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं ॥

बढ़ने लगा नित्य नयानया नेह,

नई नई कामना होती रहीं ।

कहनेका प्रयोजन है इतना,

उनके सुखकी रही सीमा नहीं ॥

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा,

अनुरागके रागमें मस्त हुआ ।

करती थी कपोती कभी यदि मान,

मनाता था पास जा व्यस्त हुआ ॥

जब जो कुछ चाहा कबूतरीने,

उतना वह वैसे समस्त हुआ ।

इस भांति परस्पर पक्षियोंमें भी,

प्रतीतिसे प्रेम प्रशस्त हुआ ॥

(३)

सुविशाल वनोंमें उड़े फिरते,

अवलोकते प्राकृत चित्र छटा ।

कहीं शस्यसे श्यामल खेतखड़े,

जिन्हें देख घटाकां भी मान घटा ॥

कहीं कोसों उजाड़में झाड़पड़े,
 कहीं आड़में कोई पहाड़ सटा ।
 कहीं कुंज, लताके वितान तने,
 घने फूलोंका सौरभ था सिमटा ॥

(४)

झरने झरनेकी कहीं झनकार,
 फुहारेका हार बिचित्र ही था ।
 हरियाली निराली न माली लगा,
 तब भी सब ढंग पवित्र ही था ॥
 ऋषियोंका तपोवन था, सुरभीका,
 जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था ।
 बस जान लो, सात्त्विक सुन्दरता—
 सुख-संयुत शान्तिका चित्र ही था ॥

(५)

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम,
 गृहस्थ-निवास बने हुए थे ।
 खपरैलोंमें कद्दू करैलोंकी बेलके
 खूब तनाव तने हुए थे ॥
 जल शीतल, अन्न, जहां पर पाकर
 पक्षी घरोंमें घने हुए थे ।
 सब ओर स्वदेश-समाज-स्वजाति—
 भलाईके ठान ठने हुए थे ॥

(६)

इस भांति निहारते लोककी लीलां
 प्रसन्न वे पक्षी फिरें घरको ।
 उन्हें देखके दूरहीसे मुँह खोलते

बच्चे चलें चट बाहरको ॥
 दुल्लराने खिलाने पिलानेसे था
 अवकाश उन्हें न घड़ी भरको ।
 कुछ ध्यान ही था न कबूतरको
 कहीं काल चला रहा है शरको ॥

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था,
 छवि छाई वसन्तकी थी वनमें ।
 सब और प्रसन्नता देख पड़ी,
 जड़ चेतनके तनमें मनमें ॥
 निकले थे कपोत-कपोती कहीं,
 पड़े झुंडमें, घूमते काननमें ।
 पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी,
 शिकारकी, ताकसे निर्जनमें ॥

(८)

उस निर्दयने उसी पेड़के पास
 बिछा दिया जालको कौशलसे ।
 वहीं देखके अन्नके दाने पड़े,
 चले बच्चे, अभिज्ञ न थे छलसे ॥
 नहीं जानते थे कि “यहाँपर है,
 कहीं दुष्ट भिड़ापड़ा भूतलसे ।
 बस फाँसके बाँसके बन्धनमें,
 कर देगा हलाल हमें बलसे” ॥

(९)

जब बच्चे फँसे उस जालमें जा,
 तब वे घबड़ा उठे बन्धनमें ।

इतनेमें कवूतरी आई वहाँ;
 दशा देखके व्याकुल ही मनमें—
 कहने लगी, हाय, हुआ यह क्या!
 सुत मेरे हलाल हुए वनमें ।
 अब जालमें जाके मिट्टूं इनसे,
 सुख ही क्या रहा इस जीवनमें ॥

(१०)

उस जालमें जाके बहेलिए के,
 ममतासे कवूतरी आप गिरी ।
 इतनेमें कवूतर आया वहाँ;
 उस घोसलेमें थी विपत्ति निरी ॥
 लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ,
 घटनाकी घटा वह घोर घिरी ।
 नयसोंसे अचानक बूँद गिरे,
 चेहरेपर शोककी स्याही फिरी ॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुखसे
 कहने लगा—'ही अति कष्ट हुआ !
 'निबलेंहीको दैव भी मारता है,'
 ये प्रवाद यहाँपर स्पष्ट हुआ ॥
 सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया,
 सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ।
 इस भांति अभागा अतृप्त ही मैं,
 सुख भोगके स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ ॥

(१२)

कल कूजन केलि—कलोलमें लिप्त हो,
 बच्चे मुझे जो मुखी करते ।

जब देखते दूरसे आते मुझे,
 किलकारियां मोदसे जो भरते ॥
 समुहायके धायके आयके पास
 उठायके पंख, नहीं टरते ।
 वही हाय, हुए असहाय अहो !
 इस नीचके हाथसे हैं मरते !

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा—
 करती थी सदा सुख कल्पनाको ।
 शिशु भी तो नहीं, जो उन्हींके लिए,
 सहता इस दारुण वेदनाको ॥
 वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा
 भोग रहा यम-यातनाको ।
 अब मैं ही वृथा इस जीवनको रख,
 कैसे सँझूंगा विडम्बनाको ?

(१४)

यही सोचता था यों कपोत, वहाँ
 चिड़ीमारने मार निशाना लिया ।
 गिर लोट गया धरती पर पक्षी,
 बहेलिएने मनमाना किया ॥
 पलमें कुलका कुल काल करालने,
 भूत-भविष्यमें भेज दिया ।
 क्षणभंगुर जीवनकी गतिका
 यह देखो, निदर्शन है बढ़िया ॥

(१५)

हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्त्वमें,
 तत्त्व-महत्त्वको भूलता है ।

उसके सिर पै खुला खड्डा सदा
 बँधा धागेमें धारसे झूलता है ॥
 वह जाने बिना विधिकी गतिको
 अपनी ही गढन्तमें फूलता है ।
 पर अन्तको ऐसे अचानक, अन्तक—
 अस्त्र अवश्य ही हूलता है ॥

(१६)

पर जो जन भोगके साथ ही योगके
 काम अकाम किया करता ।
 परिवारसे प्यार भी पूरा करे
 पर-पीर परैन्तु सदा हरता ॥
 निज भावको भाषाको भूले नहीं,
 कहीं विघ्न--व्यथाको नहीं डरता ।
 कृतकृत्य हुआ हंसते हंसते
 वह सोच सकोच बिना मरता ॥

(१७)

प्रिय पाठक, आप तो विज्ञ ही हैं,
 फिर आपको क्या उपदेश करें ?
 शिरपै शर ताने बहेलिया काल
 खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें ॥
 दशा अन्तको होनी कपोतकी ऐसी
 परन्तु न आप जरा भी डरें ।
 निज धर्मके कर्म सदैव करें,
 कुछ चिन्ह यहांपर छोड़ मरें ॥

रूपनारायण पाण्डेय ।

विविध प्रसंग ।

१. संस्कृत भाषाके प्रचारकी आवश्यकता ।

गृहस्थ नामक बंगला पत्रके अगहनके अंकमें श्रीयुक्त विधुशेखर शास्त्रीका एक बहुत ही महत्वका लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने संस्कृत भाषाके सम्बंधमें लिखते हुए कहा है कि—“संस्कृत साहित्यने सारे संसारमें अपनी महिमा स्थापित की है। संस्कृतके साथ भारतीय भाषाओंका बहुत ही निकट सम्बन्ध है। संस्कृतसे हमारी भाषाओंने बहुत कुछ ग्रहण किया है और आगे भी उन्हें बहुत कुछ ग्रहण करना होगा। उसे छोड़ देनेसे इनकी परिपुष्टि होना असंभव है। हिन्दी भाषाके अभ्युदयके लिए संस्कृतका प्रचार बहुत ही आवश्यक है। जिले जिलेमें संस्कृतका बहुत प्रचार करनेके लिए हम सबको तन मन धनसे उद्योग करना चाहिए। इसके साथ हम और भी दो भाषाओंका प्रचार कर सकते हैं और करना भी चाहिए। पालि और प्राकृत साहित्यको हम किसी भी तरह परित्याग नहीं कर सकते। क्योंकि भारतके मध्य युगके इतिहासको सम्पूर्ण करनेके लिये पालि और प्राकृत साहित्य ही समर्थ है। भारतके मध्ययुगके धर्म और समाजमें तीन धाराओंका आविर्भाव हुआ था, एक ओर बौद्ध, एक ओर जैन, और मध्यमें ब्राह्मणधारा। पालि-साहित्यकी तो थोड़ी बहुत आलोचना हुई भी है, परन्तु प्राकृत निबद्ध जैनसाहित्य अब भी हमारी आलोचनाके मार्गमें उपस्थित नहीं हुआ है। संस्कृतके साथ पालि और प्राकृतका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसके साथ इनकी बिना परिश्रमके ही अच्छी आलोचना हो सकती है।” शिक्षाप्रचारकोंको शास्त्रीजीके उक्त कथनपर ध्यान देना चाहिए।

२. एक प्राचीन राज्यका ध्वंसावशेष ।

पृथ्वीके गर्भमें मनुष्य जातिका अनन्त इतिहास भरा पड़ा है। कुछ समयसे प्राचीन बातोंकी खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर बहुत कुछ आकर्षित हुआ है। जगह जगह भूगर्भ खोदकर प्राचीन स्थानोंका और इतिहासोंका पता लगाया जा रहा है। और इस कार्यमें कहीं कहीं तो आशासे अधिक सफलता हुई है। पाठकोंको मात्स्य होगा कि भारतवर्षमें ऐसे कई स्थान खोदे जा चुके हैं—प्राचीन पाटलीपुत्र या पटनाकी खुदाईका काम तो अब तक जारी है और इसके लिए सुप्रसिद्ध दानी ताताने सरकारको एक अच्छी रकम देना स्वीकृत किया है। भारतके बाहर इस प्रकारकी खोजें और भी अधिक उत्साहके साथ हो रही हैं। एशियाके व्याविलन नामक देशका नाम पाठकोंने सुना होगा यहाँ कई वर्षोंसे पृथ्वी खोदी जा रही है। इससे वहाँके प्रसिद्ध राज नेबूकाडनेजर और उसकी राजधानीकी अनेक गुप्त बातोंका पता लगा है। साथ ही व्याविलोनियाकी अतिशय प्राचीन राजधानी किस नगरकी बहुत सी चीजें हाथ लगी हैं। राजमहलके विशाल आँगनमें एक बड़े भारी मन्दिरका कुछ भाग मिला है जिसका नाम है—‘स्वर्गमर्त्यकी दीवाल, जातीय देवता जमामाका मन्दिर।’ इस मन्दिरमें जो मूर्तियाँ और वर्तन आदि पाये गये हैं वे ४ हजार वर्षसे भी पुराने हैं। बगदाद और निनेभके मध्यवर्ती असुरनगरके खोदनेसे जो कुछ मिला है उससे प्राचीन असीरिया वासियोंके एक सुगठित सभ्यताके इतिहासका मार्ग सुगम हो गया है। कालडिया और असीरियावालोंके जो मकानात मिले हैं वे सब ईंटोंके बने हुए हैं। एक पूराका पूरा मकान मिला वह सात मंजिलका है। प्रत्येक मंजिलमें सात सात कमरे हैं और वे जुदा जुदा रंग और आकारकी ईंटोंसे बने हुए हैं। निनेभ शहरके

असुर-वनिपाल राजाके राजमहलमें एक बड़ी भारी लायब्रेरी मिली है। लायब्रेरीमें ईंटोंपर लिखे हुए कई हजार फलक हैं। इनके पढ़नेसे मालूम होता है कि ये दूसरे फलकोंपरसे किये गये हैं। अर्थात् इसके पहले भी इन लिपियोंका साहित्य था। इन फलक लिपियोंमें जुदा जुदा प्रसिद्ध भाषाओंका साहित्य, अंकशास्त्र, पशु पक्षी, वनस्पतियोंकेनाम, भूगोल वृत्तान्त, और पौराणिक कथायें संगृहित हैं। ये फलक बड़ी सावधानीसे संरक्षित करके रक्खे गये हैं। इनके सिवा और प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानोंकी तथा शिल्पादि वस्तुओंका आविष्कार हुआ है जिससे बड़े ही महत्वकी बातें मिली हैं, बहुतसे मकान और वस्तुयें तो ऐसी मिली हैं जो वाइविल बननेके पांच हजार वर्ष पहलेकी बतलाई जाती हैं। इसकी ऐतिहासिक पांडितोंमें बड़ी चर्चा है। इतिहास हमको धीरे धीरे बतलाता जा रहा है कि मनुष्य जातिकी सभ्यता जितनी पुरानी बतलाई जाती है उससे बहुत ही पुरानी—अतिशय प्राचीनतम है।

३. चार लाखका महान् दान।

बड़े ही आनन्दका विषय है कि जैनसमाजके धनिकोंने समयोपयोगी कार्योंके लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया है। इस विषयमें इन्दौरके सेठोंने बड़ी ही उदारता दिखलाई है। पाठकोंको मालूम होगा कि अभी कुछ ही दिन पहले श्रीमान् सेठ कल्याणमलजीने दो लाख रुपयेका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूलकी नींव डाल दी है। हाईस्कूलका बिल्डिंग प्रायः पूरा बन चुका है और दूसरी तैयारियाँ खूब तेजीके साथ हो रही हैं। जैनियोंका यह एक आदर्श स्कूल होगा और सुना है कि सेठजी स्वीकृत रकमसे भी इस काममें अधिक रकम लगानेके लिए प्रस्तुत हैं। इधर पालीताणाके अधिवेशनमें श्रीमान् सिठ ह्कमचन्दजीने विद्याप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी रकम और

भी देना स्वीकार की है। जहां तक हमारा खयाल है वर्तमान समयमें विद्योन्नतिके लिए दिगम्बर जैनसमाजमें यह सबसे बड़ा दान हुआ है। इससे बड़ी रकम इस कार्यके लिए यही सबसे पहली निकली है। इसमें सन्देह नहीं कि यह उदारता प्रगट करके सेठजीने अपना नाम युग युगके लिए अमर कर लिया है। यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि सेठजी सम्पूर्ण शिक्षित जनोंकी सम्मति लेकर इस रकमसे एक सर्वोपयोगी सर्वजनसम्मत संस्था खोलना चाहते हैं। इस विषयमें बहुत जल्दी सब लोगोंसे सम्मति माँगी जायगी और एक कमेटी संगठित करके संस्था खोलनेका निश्चय किया जायगा। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि इस रकमसे कोई आदर्श संस्था खुले और जैनियोंकी जो आवश्यकतायें हैं उनमेंसे किसी एककी सन्तोष योग्य पूर्ति हो

४. शिक्षितोंका कर्तव्य।

जैनसमाजमें शिक्षितोंकी कमी नहीं। अँगरेजी और संस्कृतके ढेरके ढेर विद्वान् हमारे यहाँ हैं। इनमेंसे जो जितना उच्च शिक्षा प्राप्त है, संस्थाओंके विषयमें उसका सुर उतना ही ऊँचा है। कोई जैनहाईस्कूल खोलना आवश्यक बतलाता है, कोई जैनकालेजके बिना जैनसमाजकी स्थिति ही असंभव समझता है और कोई एक बड़े भारी संस्कृत विद्यालयकी आवश्यकता प्रतिपादन करता है। इस विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक है वह होना ही चाहिए; परन्तु हम यह पूछते हैं कि क्या ये आवश्यकतायें सच्चे जीसे बतलाई जा रही हैं? इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए क्या किसीके हृदयमें कुछ उद्योग करनेकी या थोड़ा बहुत स्वार्थ त्याग करनेकी इच्छा भी कभी उत्पन्न हुई है? एक दिन था जब आप लोगोंके मुँहसे इस प्रकारका रोना शोभा देता था कि क्या कौरे जैनियोंमें कोई धन लगानेवाला नहीं है। परन्तु अब

वह वक्त जा रहा है। मैं आज इन्दौरमें बैठा हुआ अनुभव कर रहा हूँ कि रुपया लगानेवाले तो तैयार हो गये; परन्तु हाईस्कूलों और कालेजकी चिल्लाहटसे कानकी झिल्लियाँ फाड़नेवालोंका कहीं पता नहीं है। यहाँ क्यों मैं तो प्रत्येक संस्थामें यही हाल देखता हूँ। जैनियोंकी प्रायः सब ही संस्थाओंकी दुर्दशा है और इसका एक मात्र कारण यह है कि हमारे यहाँ सुयोग्य काम करनेवाले नहीं मिलते। एक संस्था खुलती है, कुछ दिनोंके लिए अपनी टीमटाम दिखा जाती है और अन्तमें वे ही 'ढाकके तीन पात' रह जाते हैं—अच्छे शिक्षित कार्यकर्त्ताओंके अभावसे वह अपना पैर नहीं बढ़ा सकती। प्यारे शिक्षित भाइयो, अब यह समय आलस्यमें या केवल स्वार्थकी कीचड़में पड़े रहनेका नहीं है। इस समय यदि आप कार्यक्षेत्रमें न आवेंगे तो बस समझ लीजिए कि जैनसमाजकी उन्नति हो चुकी। इन नवीन संस्थाओंको अपने अपने कन्धोंपर नहीं रक्खा तो बस आगे इनका खुलना ही बन्द हो जायगा और यदि अपने अपने कर्तव्यका पालन किया तो अभी क्या हुआ इस धनिक जैनजातिमें प्रतिवर्ष ही ऐसी लाख दो लाख चार चार लाखकी अनेक संस्थाओंका जन्म होगा। और आपको काम करते देखकर आपके पीछे सैकड़ों कर्मवीर इन संस्थाओंके चलानेके लिए तैयार होते रहेंगे। इस समय तो काम करनेवाले कहीं दिखते ही नहीं हैं। मालूम नहीं आज वे स्टेजपर खड़े होकर बड़े बड़े लेक्चर झाड़नेवाले कहाँ हैं? भाइयो, लेक्चरोंका काम अब नहीं रहा, वह तो हो चुका। अब तो कामका वक्त आया है। दयानन्द कालेज, पूना कालेज, हिन्दू कालेज, गुरुकुल आदि संस्थाओंको देखकर सीखो कि देश और समाजकी सेवा कैसे की जाती है और फिर अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार

जिससे जितनी हो सके इन संस्थाओंकी सेवाके लिए कटिबद्ध हो जाओ—और लोगोंको दिखला दो कि शिक्षा प्राप्त करनेका फल केवल धन कमाना नहीं, किन्तु देश और समाजकी सेवा करना है।

५. पदवियोंका लोभ.

देखते हैं कि आजकल जैन समाजमें पदवियोंका लोभ वे तरह बढ़ता जाता है। एक तो सरकारकी औरसे ही प्रतिवर्ष चार छह जैनी रायसाहब, रायबहादुर आदिकी वीररसपूर्ण पदवियोंसे विभूषित हो जाते हैं और फिर जैनियोंकी खास टकसालमें भी दश पाँच सिंगई, सवाई सिंगई, श्रीमन्त आदि प्रतिवर्ष गढ़े जाते हैं। उधर सरकारी यूनीवर्सिटियोंकी भी कम कृपा नहीं है। उनके द्वारा भी बहुतसे बी. ए., एम. ए., शास्त्री, आचार्य आदि बना करते हैं। परन्तु मात्स्य होता है कि लोगोंको इतनेपर भी सन्तोष नहीं। उनके आत्माभिमानकी पुष्टि इतनेसे नहीं हो सकती। पदवी पानेके ये द्वार उन्हें बहुत ही संकीर्ण मात्स्य होते हैं। इनसे तंग आकर अब उन्होंने सभा समितियोंका आश्रय लिया है। चूंकि पदवीदान सरीखा सहज काम और कोई नहीं इस लिए सभाओंने बड़ी खुशीसे यह काम स्वीकार कर लिया है। अभी कुछ समयसे प्रांतिक सभा महासभा आदि एक दो सभाओंने इस कामको अपने हाथमें लिया था और दो चार व्यक्तियोंको अपने कृपा कटाक्षसे ऊँचा उठाया था। परन्तु इनका यह कार्य बड़ी ही मन्दगतिसे चल रहा था। यह देख भारत जैन महामण्डलसे न रहा गया उसने अबके बनारसके अधिवेशनपर सारी संकीर्णताको अलग कर दिया और एक दो नहीं दर्जनों पदवियों अपने कृपापात्रोंको दे डालीं। इस विषयमें उसने इतनी उदारता दिखलाई जितनी शायद ही कोई दिखा सकता। सुनते तो यहाँ तक हैं कि मण्डलके बहुतसे मेम्ब-

रोंसे इस विषयमें सम्मति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी गई। अस्तु, जब पदवियाँ दी जा चुकी हैं और उनका व्यवहार भी किया जाने लगा है, तब इस विषयको लेकर तर्क वितर्क करनेमें कुछ फल नहीं कि जिन लोगोंको पदवियाँ दी गई हैं वे वास्तवमें उनके योग्य थे या नहीं और कमसे कम पदवी देनेवाले अपनी दी हुई पदवियोंका कुछ अर्थ समझते थे या नहीं; किन्तु यह हमें जरूर देख लेना चाहिए कि पदवी देना कहाँ तक अच्छा है, पानेवालेपर उसका क्या परिणाम होता है और हमारी पदवियोंकी कहाँ तक कदर करते हैं। यह सच है कि जो लोग धर्म और समाजकी सेवा कर रहे हैं उनका सत्कार करना, उनको गौरवकी दृष्टिसे देखना हमारा कर्तव्य है। हमारे ऊपर उनके जो सैंकड़ों उपकारोंका बोझा है उसे हम और किसी तरह नहीं तो उनके प्रति अपनी शाब्दिक भक्ति प्रगट करके हलके ही होना चाहते हैं; परन्तु साथ ही हमें इस बातका खयाल अवश्य रखना चाहिए कि वर्तमानमें हमें ऐसे नेताओंकी और काम करनेवालोंकी जरूरत है जो सच्चे कर्मवीर हैं। अर्थात् जो किसी भी प्रकारके फलकी आकांक्षा रक्खे बिना ही देश, समाज और धर्मकी सेवा अपना कर्तव्य समझकर करें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी इस शाब्दिक भक्तिसे या पदवीदानसे वे गुमराह हो जावें और अपने कर्तव्यको भूलकर हमारे दो चार शब्दोंके लोभसे मार्गच्युत हो जावें। उन्हें अपने कर्तव्यका अभिमान होना चाहिए न कि पदवीका। इसके सिवा जैसे पुरुषोंकी हमारे यहां आवश्यकता है हमारी इस पदवीवर्षासे उनका आदर्श गिर जाता है। सच पूछिए तो अभी तक जैन समाजने एक भी नेता कार्यकर्ता और सच्चा सेवक ऐसा उत्पन्न नहीं किया है जो हमारा आदर्श हो सके और जिसके प्रति भक्ति करनेके लिए हमें पदवियाँ

देनेकी चिन्ता करनी पड़े। हम यह नहीं कह सकते कि जिन्हें पद-वियाँ दी गई हैं वे योग्य नहीं हैं; नहीं, परन्तु यह अवश्य है कि पद-वियाँ देकर हमने एक तरहके आदर्श लोगोंके सामने खड़े कर दिये हैं कि हमारे आदर्श ये हैं। इतना होते ही हम कृतकृत्य हो सकते हैं। और यह बहुत ही बुरी बात है। हमारे आदर्श पुरुष बहुत ही ऊंचे होने चाहिए और रात दिन अपने कर्तव्य करते हुए उत्कण्ठके साथ हमें देखते रहना चाहिए कि ऐसे महात्माओंके जन्मसे हमारा देश कब पवित्र होता है। यदि हम वर्तमान उपाधिधारियोंसे ही तृप्त हो गये तो सब हो चुका; हमें अपनेसे और अधिक आशा न रखनी चाहिए। इस समय हमें दूसरे समाजोंके तथा सर्वसाधारणके नेताओंको देखना चाहिए कि उन्हें कितनी पदवियाँ दी गई हैं। मान्यवर तिलक, मि० गोखले, लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, श्रीयुक्त गाँधी आदि आदर्श पुरुषोंको बतलाइए कितनी पदवियाँ दी गई हैं? कई महाश-योंका यह कथन है कि हमारा समाज अभी औरोंसे बहुत पीछे है, इस लिए उसमें जो काम करनेवाले हैं उनका सत्कार करके उन्हें उत्साहित करना चाहिए। परन्तु सच पूछा जाय तो यह पालिसी अच्छी नहीं। लोभसे या ऐहिक अभिमान पुष्ट करके जो लोग तैयार किये जावेंगे वे उनसे कदापि अच्छे और ऊंचे नहीं हो सकते जो अपना कर्तव्य समझ कर, समाजसेवाको अपना पवित्र कर्म मानकर काम करते हैं। जिसको पदवी दी जाती है उससे मानो कह दिया जाता है कि तुम अपना काम कर चुके, कृतकृत्य हो चुके, अब तुम्हें कुछ भी करना बाकी नहीं है। आशा है कि हमारे इन थोड़ेसे शब्दोंपर पदवी देनेवाले और लेनेवाले दोनों ही कृपादृष्टि करेंगे और आगे जिससे यह पदवियोंका लोभ बढ़ने न पावे इसकी उचित व्यवस्था करेंगे।

६. हमारी संस्थायें और उनपर लोगोंकी सम्मतियाँ ।

ज्यों ही कोई पढ़ा लिखा या प्रसिद्ध पुरुष किसी संस्थामें पहुँचा और एकाध दिन रहा कि उसके आगे संस्थाकी ग्विहजीटर्स बुक रख दी जाती है। उससे कहा जाता है कि इस संस्थाके विषयमें आप अपनी राय लिखिए । एक तो जैन समाचारपत्रोंकी कृपासे उस निरीक्षकका पहलेहीसे कुछका कुछ विश्वास बना हुआ होता है । क्योंकि समाचारपत्रोंके सम्पादक एक तो संस्थाकी भीतरी हालतसे स्वयं ही अपरिचित होते हैं, दूसरे संस्थाके संचालक लोग उसकी प्रसिद्धिके लिए प्रायः दबाव ही डाला करते हैं और तीसरे सम्पादक महाशय भी संस्थाको कुछ प्राप्ति हो जाया करे इस खयालको अधिक पसन्द करते हैं । फल यह होता है कि निरीक्षक महाशय अपने पूर्व विश्वासके अनुसार संस्थाकी प्रशंसा कर देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं । वास्तवमें जब तक दश बीस दिन रहकर किसी संस्थाका बारीकीसे अवलोकन न किया जाय तब तक कोई भी उसका भीतरी रहस्य नहीं जान सकता है । परन्तु यहाँ तो एक ही दिनमें निरीक्षक महाशय अपनी कलमसे उसे सर्वोपरि बना देते हैं । इसके बाद संस्थाके संचालक उस रिमार्कको समाचारपत्रोंमें तथा वार्षिक रिपोर्टमें प्रकाशित कर देते हैं । लोग समझते हैं कि सचमुच ही यह संस्था अच्छा काम कर रही है— इसमें कोई दोष नहीं है । परन्तु इस पद्धतिसे समाजको और संस्थाको बहुत ही हानि पहुँचती है । समाजमें उसके विषयमें कुछका कुछ खयाल हो जाता है और संस्थाके संचालक इन प्रशंसासूचक सम्मतियोंसे गुमराह हो जाते हैं । इस विषयमें लोगोंको सचेत हो जाना चाहिए ।

७. संस्थाओंमें अंधाधुंध खर्च ।

हमारे एक पाठक लिखते हैं कि जैनियोंकी संस्थाओंमें विशेष

करके जो नईनई खुलती हैं, अन्धाधुन्ध खर्च किया जाता है। यह न होना चाहिए। संचालकोंको समाजके धनको अपना अपना कमाया हुआ समझकर बहुत खयालसे खर्च करना चाहिए। और संस्थाओंकी आवश्यकताओंको जहाँ तक बने कम करना चाहिए। आयोजनों और आडम्बरोकी ओर कम दृष्टि रखकर कामकी ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिए। इस विषयमें इसी अङ्कमें प्रकाशित 'शिक्षासमस्या नामक लेखकी ओर हम पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित करते हैं। उसमें इस विषयको बहुत ही स्पष्टतासे समझाया है।

८. जैन साहित्य सम्मेलन।

आगामी मार्चकी ता० २-३-४ को जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन होगा। उस समय जोधपुरमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध साधु श्रीविजयधर्म सूरि रहेंगे और उनसे मिलनेके लिए जर्मनीके विद्वान् डाक्टर हरमन जैकोबी पधारेंगे। इस शुभ सम्मेलनके अवसरपर जैनसाहित्य सम्मेलनका अधिवेशन एक तरहसे बहुत ही उचित हुआ है। सम्मेलनके सेक्रेटरीसे मालूम हुआ है कि जैनोंके तीनों सम्प्रदायके साहित्यसेवियोंको इस जलसे पर शामिल होनेका निमंत्रण दिया गया है। यह एक और भी बहुत अच्छी बात है। यदि हम सब साहित्य जैसे विषयकी चर्चा करनेके लिए भी एकत्र न हो सके तो और किस काममें एक हो सकेंगे? जिन जिन कामोंको तीनों सम्प्रदायवाले एक साथ मिलकर कर सकते हैं उनमें एक यह भी है। इस सम्मेलनमें अनेक विषयोंपर निबन्ध पढ़े जावेंगे और निम्नलिखित विषयोंकी खास तौरसे चर्चा होगी:—१ प्राकृत भाषाका कोश और व्याकरण नई पद्धतिके अनुसार तैयार करवाना। २ यूनीवर्सिटियोंमें प्राकृत भाषा दाखिल करवानेकी आवश्यकता। ३ जैन-

पाठ्य पुस्तकें तैयार करवानेकी ज़रूरत । ४ जैनसाहित्यका प्रसार करनेके लिए पाश्चात्य विद्वानोंने जो प्रयत्न किया है, उसके विषयमें धन्यवाद देना और विशेष प्रयत्न करनेके लिए प्रेरणा करना । ५ जैन इतिहास तैयार करनेकी आवश्यकता । ६ जैन म्यूजियमके स्थापित करनेकी आवश्यकता । ७ प्राचीन खोजोंके द्वारा जैन साहित्य प्रगट करनेकी आवश्यकता । ८ भिन्न भिन्न भाषाओंके द्वारा जैनसाहित्य प्रगट करानेकी आवश्यकता । ९ प्रगट होनेवाले साहित्यको पास करनेवाले एक मण्डलकी आवश्यकता । इसमें सन्देह नहीं कि जैनियोंमें एक साहित्यसम्मेलनकी बहुत बड़ी ज़रूरत है; परन्तु यह बात अभी विचारणीय ही है कि इसका समय अभी आया है या नहीं । दिग्म्बर सम्प्रदायके शिक्षितोंसे हमारा जो कुछ परिचय है और अपने श्वेताम्बरी और स्थानकवासी मित्रोंसे हमारी जितनी जानकारी है उसके खयालसे हम समझते हैं कि अभी हममें साहित्यसेवी बहुत ही कम हैं और जब तक साहित्यसेवियोंकी एक अच्छी संस्था न हो जाय तब तक इस विषयमें सफलताकी बहुत ही कम आशा है ।

९. बालक साधु न होने पावें ।

बहुतसे साधु वेषधारी लोग छोटे छोटे बच्चोंको फुसलाकर साधु बना लेते हैं और उनसे अपनी शिष्यमण्डलीकी वृद्धि करते हैं । श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायके जैनियोंमें तो इसका बहुत ही जोर है । प्रतिवर्ष बीसों ना समझ बच्चे साधुका वेष धारण किया करते हैं और जब ये जवान होते हैं तब इनके द्वारा ढोंग और दुराचारोंकी वृद्धि होती है । इनमें बहुत ही कम साधु ऐसे निकलते हैं जो इस पवित्र नामके धारण करने योग्य हों यह देखकर प्रान्तीय व्यवस्था-

पक कौंसिलमें आनरेबल लाला सुखवीरसिंहजीने बालक साधुओंको रोकनेके लिए एक बिल पेश किया है। हर्षका विषय है कि अभी हाल ही इस बिलका काशीके पण्डितोंने पं० शिवकुमार शास्त्रीकी अध्यक्षतामें खूब दृढ़ताके साथ समर्थन किया इसके पहले काशीके निर्मले साधुओंने भी इसका अनुमोदन किया था। प्रायः सभी समझदार लोग इसके पक्षमें है। परन्तु हमको यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि कलकत्तेके कुछ जैनी भाइयोंने इसका विरोध किया है और कुछ दिन पहले जैनमित्रके सम्पादक महाशयने भी लोगोंको कलकत्तेके भाइयोंका साथ देनेके लिए उत्साहित किया था। हमारी समझमें उक्त सज्जन या तो इन बालक साधुओंके विकृत जीवनसे परिचित नहीं हैं या इन्हें यह भय हुआ है कि कहीं इससे हमारे धर्ममार्गमें कुछ क्षति न पहुँचे। वह समय चला गया; वह धर्मपूर्ण समाज अब नहीं रहा और वे भाव अब लोगोंमें नहीं रहे। जब छोटीसी उमरमें बालकोंको वैराग्य हो जाता था। और उमरमें केवलज्ञान होनेकी संभावना थी। यह समय उससे ठीक उलटा है इन बालक साधुओंके द्वारा कितने कितने अनर्थ होते हैं उन्हें देख सुनकर रोम खड़े होते हैं। इस लिए इस विषयमें कुछ रुकावट हो जाय तो अच्छा ही होगा। हाँ, हम इतनी प्रार्थना कर सकते हैं कि इस कानूनका वर्ताव समझ बूझ कर किया जाय इसमें सख्ती न की जाय।

१० एक शिक्षितके अपने पुत्रके विषयमें विचार।

हमारे पाठक जयपुरनिवासी श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. को अच्छी तरहसे जानते हैं। कुछ दिन पहले आपने अपने पुत्र चिरंजीवि प्रकाशचन्द्रकी नवम वर्षगांठका उत्सव किया था। यह उत्सव बिलकुल ही नये ढंगका और प्रत्येक शिक्षितके अनुकरण करने योग्य हुआ था।

स्थानकी कमीसे हम उत्सवका पूरा विवरण न देकर केवल उतने ही शब्द यहाँ प्रकाशित करेंगे जो श्रीसेठीजीने उस समय कहे थे—“सज्जन-वृन्द, आज आप लोगोंने बड़ी भारी कृपा करके मेरे इस गरीब घर-को पवित्र किया। इसका मैं बहुत ही आभारी हूँ। आज प्रकाश-चन्द्रका जन्म दिन है। यह जब पैदा हुआ था तब इसने इस घरमें आनन्दके बाजे बजवाये थे और आज यह नौवें वर्षका उलंघन कर दशवें-में पदारोपण करता है, इसलिए आज भी आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। किन्तु मेरी समझमें उस खुशीमें और इस खुशीमें बहुत अन्तर है। इसका वर्णन करनेके लिए बहुत समय चाहिए इसलिए मैं उसका जिक्र न करके अपने उद्देश्यकी ओर झुकता हूँ। बान्धवो, मैं अपने लख्ते ज़िगर प्रकाशचन्द्रसे आम लोगोंकी तरह यह आशा नहीं रखता कि यह मुझे धन कमा कर दे। मैं नहीं चाहता कि प्रकाशचन्द्र बड़े बड़े महल मकानात चुनावे और बुढ़ापेमें मेरी सेवा करे। मैं नहीं चाहता कि यह बी. ए, एम. ए, पासकर तहसीलदारी या नाजिमी कर गुलाम बने। मैं सौ दो सौ रुपये मासिक वेतनमें इसका जीवन नहीं बिकवाना चाहता। मैं चाहता हूँ कि जिस भूमिपर जन्म लेकर इसने आपको इतना बड़ा किया है, जिसके अन्न जल वायुसे पालित पोषित होकर यह अपनी प्राणरक्षा कर सका है, जिसके सन कपासादिके कपड़ोंसे अपने शरीरको बचा सका है उसी जन्म भूमिकी भलाईके लिए उसकी बहवूदीके लिए और उसकी उन्नतिके लिए यह अपना सर्वस्व अर्पण कर दे। बेटा प्रकाश, आजसे मैंने तुमको उस स्वर्णमयी धराका, उस भीमार्जुन जैसे वीरोंको जन्म देनेवाली वसुन्धराका, कर्ण सदृश दानियोंकी जन्मदातृ भूमिका, समन्तभद्राचार्य, शंकराचार्य, हेमचन्द्राचार्य, अकलङ्क भट्टादि तत्त्ववेत्ताओंकी धारक धरणीका, गौत-

मादि जैसे प्रेमपाठक महात्माओंको उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीका, महा-
वीर पार्श्वनाथादि जैसे तीर्थकरोंको अपनी गोदमें पालन करनेवाली
मेदिनीका त्राण करनेके लिए उसके उद्धारार्थ अपर्ण किया। वत्स,
आजसे तुम इसी भारतभूमिको अपनी जननी समझना, समाज व
धर्मको अपना पिता मानना, देशहितैषिता व समाजहितैषितामें
महाराणा प्रताप व शिवाजीका अनुकरण करना, अपने धर्ममें दृढ़
रहना, प्राणके रहने तक अपने देशव्रतका व धर्मव्रतका पालन करना,
महात्मा ईसाकी भाँति शूलीपर चढ़ने पर भी अपने धर्मकी रक्षा करना,
साक्रेटीजकी भाँति यदि जहरका प्याला पीना पड़े तो बेधड़क होकर
पीना, गुरु गोविन्दसिंहके नौ और ग्यारह वर्षके बालकोंकी भाँति
यदि धर्मके लिए तुम्हें कोई दीवालमें चुनवा देनेकी आज्ञा दे तो तुम
बेधड़क होकर दीवालके साथ अपली इस नाशमान देहको चूने मिट्टी-
की भाँति चुने जाने देना, अपने पूर्वज निकलङ्ककी भाँति यदि तुम्हें
अपने प्राणोंका त्याग करना पड़े तो बेधड़क होकर करना। किन्तु
अपने धर्मको किसी तरह कलङ्कित न होने देना। सेठीजीके वचन
बड़े ही मार्मिक हैं। प्रत्येक शिक्षित पिताको अपने पुत्रसे इसी प्रकार
की पवित्र आशायें रखनी चाहिए।

११ बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिकोत्सव।

अबकी बार बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिक अधिवेशन शत्रुंजय
सिद्धक्षेत्रपर धूमधामके साथ हो गया। लगभग दो ढाई हजार दर्शक
उपस्थित हुए थे। अधिवेशनमें सिवा इसके कि सभापति साहब

श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजीने शिक्षाप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी एक मुश्त रकम देनेका वचन दिया और महत्त्वका कार्य नहीं हुआ। स्वागतकारिणी समितिके सभापतिका और सभापतिका व्याख्यान हुआ, मामूली प्रस्ताव पेश हुए और पास किये गये, इस तरह सभाका जल्सा समाप्त हो गया। सभाएँ और उनके अधिवेशन करते हुए हमें बहुत दिन हो गये। इनसे हमारा इतना अधिक परिचय हो गया है कि अब इनमें हमें पहले जैसा आनन्द नहीं आता; अब ये काम भी एक प्रकारकी रूढ़ियेंका रूप धारण करते जाते हैं और हमारे उत्साह आनन्द आदिमें कुछ विशेष उत्तेजना नहीं ला सकते हैं। इसलिए हमें अब अपने मार्गको कुछ बदलना चाहिए और अपनी प्रत्येक सभाके जल्सेको ऐसा रूप देना चाहिए जिससे वह हमारे हृदयमें कुछ नवीन उत्साह और आनन्दकी वृद्धि करे, किसी खास कार्य करनेके लिए हममें उत्तेजना उत्पन्न करे, हमारे नवयुवकोंको नये नये कर्तव्यके पथ सुझावे और आगे अपनी अपनी जिम्मेदारियोंको अधिकाधिक समझने लगे। यदि हम ऐसा न कर सकें तो कहना होगा कि समाजके सिरपर विवाह शादियों या मेला उत्सवोंके समान यह एक और नया खर्च मढ़ दिया है।

१२ एक बालिकाकी अतिशय शोकजनक मृत्यु।

जिस तरह इस ओर कन्याविक्रयका जोरोशोर है उसी प्रकार बंगालमें कन्याके पितासे मनमाना रुपया लेकर पुत्रकी सगाई करनेका अत्यधिक प्रचार है, यह धन जो कन्याके पितासे लिया जाता है यौतुक कहलाता है, बिना हजारों रुपया यौतुक दिये कोई पिता अपनी कन्या अच्छे वरके साथ सम्बन्ध नहीं विवाह पाता। इससे जिन साधारण स्थितिके गृहस्थोंके एक साथ दो कन्याएँ विवाहने योग्य हो गईं उनके दुःखका कुछ पारावार नहीं रहता। फाल्गुणके प्रवासीसे मालूम हुआ

है कि १४ वर्षकी लड़कीका एक शिक्षित युवकके साथ विवाहसम्बन्ध स्थिर हुआ। वरका पिता जितना यौतुक चाहता था उस सबको जुटा न सकनेके कारण आखिर उसने अपने रहनेका मकान तक गिरवी रख दिया। परन्तु यह बात कोमलचित्ता बालिकासे न देखी गई। उसने सोचा, मेरे लिए मेरे मातापिता सदाके लिए दारिद्र कूपमें पड़ते हैं, यह कितने संतापका विषय है! इन्हें इस दुःखसे अवश्य मुक्त करना चाहिए। और कुछ उपाय न देखकर वह आगमें पड़कर मर गई। हाय जिस भारतवर्षको यह अभिमान था कि हमारे यहाँके विवाहसम्बन्ध एक प्रकारके आध्यात्मिक व्यापर हैं, भारतवासी अपने विवाह इहलौकिक शान्ति और पारलौकिक कल्याणके लिए करते थे, उसी देशमें अब यह क्या हो रहा है। कहीं कन्यायें बेची जाती हैं और कहीं पुत्र बेचे जाते हैं। क्या जाने हमारा समाज इस योग्य कब होगा जब इन कुरीतियोंसे पिण्ड छुड़ाकर अपने गौरवकी रक्षा कर सकेगा।

क्षमा—प्रार्थना ।

मैं पाँच महीनेसे बीमार हूँ। खाँसी मेरा पीछा नहीं छोड़ती। कोई एक महीनेसे यहाँ इन्दौरमें इलाज करा रहा हूँ। अभी तक कुछ भी आराम नहीं हुआ। जैनहितैषी इसी कारण समयपर प्रकाशित नहीं हो सकता, सम्पादनमें भी बहुत कुछ शिथिलता होती है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि यदि कुछ समय और भी हितैषी समयपर न निकल सके, तो उसके लिए वे उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान करेंगे।

जरूरत ।

सनातन जैन ग्रंथमालामें जो संस्कृत ग्रंथ छपते हैं वे हस्त-लिखित कई शुद्ध प्रतियोंके विना शुद्ध नहीं छप सकते इस लिये भंडारोंसे निकाल कर जो महाशय नीचे लिखे ग्रंथोंकी एक २ प्रति (जहां तक हो शुद्ध और अति प्राचीन हो) भेजेंगे तो संस्थापर बड़ी दया होगी। ग्रंथ छप जानेपर मूल प्रति वैसीकी वैसी वापिस भेज दी जायगी। और वे चाहेंगे तो दो प्रति या अधिक प्रति मंदिरोंमें विराजमान करनेके लिये छपी हुई भेज देंगे। प्राचीन ग्रंथ वापिस आनेमें संदेह हो तो हम उसके लिये डिपाजिटमें रुपया जमा करा देंगे। ग्रंथ रजिस्टर्ड पार्सलमें गत्ते वगैरह लगा कर बड़े यत्नसे भेजना चाहिये जिससे पत्रे टूटें नहीं।

ग्रंथोंके नाम ।

- १ राजवार्तिकजी मूल संस्कृत अकलंक देवकृत
- २ समयसारजी आत्मख्यातिटीका अमृतचंद्र सूरिकृत
- ३ समयसार तात्पर्यय वृत्ति सहित
- ४ समयसारके कलशोंकी संस्कृत टीका
- ५ समयसारके कलशोंकी सान्वयार्थ पुरानी भाषाकी बचनिका
- ६ जैनैंद्र व्याकरणकी सोमदेवकृत शब्दार्णवचंद्रिका (लघुवृत्ति)
- ७ जैनैंद्र महावृत्ति अति प्राचीन प्रति
- ८ प्राकृत व्याकरण भट्टारक शुभचन्द्रकृत स्वोपज्ञ टीकासह
- ९ औदार्य चिंतामणि (प्राकृतव्याकरण) श्रुतसागरकृत
- १० पद्मपुराण रविषेणाचार्यकृत
- ११ शाकटायनकी चिंतामणिटीका
- १२ शाकटायनकी अमोधवृत्ति टीका (ताडपत्री)

इन सबकी लिपी चाहे कर्णाटकी द्राविडी नागरी चाहे जैसी भेजना चाहिए।

प्रार्थी

पन्नालाल बाकलीवाल

व्यवस्थापक—भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

बनारस सिटी ।

जैनहितैषीके नियम ।

१. जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ढांकखर्च सहित १॥) पेशगी है ।
२. इसके ग्राहक सालके शुरुहासे बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं । बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरु सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दीवालीसे शुरु होती हैं ।
३. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा । दो दो महिने बाद लिखनेवालोंके पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे भेजे जावेंगे ।
४. बैरंग पत्र नहीं लिये जाते । उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये ।
५. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख बगैरह “सम्पादक जैनहितैषी, पो० गिरगांव-बम्बई”के पतेसे भेजने चाहिये ।
६. प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे करना चाहिये ।

प्रवचनसार ।

मूल, संस्कृत छाया, अमृतचन्द्रसूरि और जयसेनसूरिकी दो संस्कृत टीकार्ये और पं० हेमराजकृत भाषा टीका सहित । मूल्य तीन रुपया ।

गोमट्टसार कर्मकाण्ड ।

मूल, संस्कृत छाया और पं० मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीकासहित छपकर तैयार है । मूल्य दो रुपया ।

हनुमानचरित्र ।

इसमें अंजना पवनंजयके पुत्र हनुमानजीका संक्षिप्त चरित्र सरस भाषामें दिया गया है । इसे खंडवाके श्रीयुत सुखचन्द पदमशाह पोरवालने बनाया है । मूल्य छह आने ।

चरचाशतक ।

लीजिए, चरचाशतक भी बहुत ही सुगम और सुन्दर भाषा-टीका सहित छपकर तैयार हो गया। चरचाशतककी ऐसी शुद्ध और सबके समझमें आने योग्य टीका अब तक नहीं छपी। इसका मूलपाठ तो बहुत ही शुद्ध छपा है—जो कई प्रतियों-परसे सोधा गया है। प्रारंभमें कवित्तोंकी और विषयोंकी अकारादि क्रमसे सूची दे दी गई है। चार नकशे भी साथ छपे हैं। छपाई और कपड़ेकी जिल्द बहुत ही सुन्दर है। इतने पर भी मूल्य सिर्फ बारह आने।

न्यायदीपका ।

सुगम हिन्दी भाषाटीका सहित ।

शायद ही कोई ऐसा जैनी होगा जिसने इस ग्रन्थका नाम न सुना हो। यह जैनन्यायका सबसे पहला सुगम और सुन्दर ग्रन्थ है। जो लोग जैनन्यायका स्वरूप जानना चाहते हैं, पर संस्कृत नहीं जानते उनके सुभीतेके लिए यह सुगमटीका बोलचालकी हिन्दीमें तैयार कराई गई है। विद्यार्थियोंके भी यह बड़े कामकी है। इसका मूलपाठ बहुत शुद्ध छपा है। सुबोध विद्यार्थी विना गुरुके भी इसे पढ़ सकते हैं। मूल्य बारह आना।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई ।

हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिकी चेष्टा ।

हिन्दीमें उच्च श्रेणीके ग्रन्थोंका अभाव देखकर हमने जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयकी शाखाके रूपमें हिन्दीग्रन्थरत्नाकर नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसकी ओरसे हिन्दीके ही सर्वसाधारणोपयोगी अच्छे अच्छे ग्रंथ प्रकाशित किये जाते हैं। हिन्दीके नामी नामी लेखकोंने इसके लिए ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया है। अब तक इसकी ओरसे पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—१ स्वाधीनता, २ मिलका जीवनचरित, ३ प्रतिभा, ४ फूलोंका गुच्छा, और ५ आँखकी किरकिरी। इन सब ही ग्रन्थोंकी सरस्वती, भारतमित्र, श्रीव्येकटेश्वरसमाचार, हिन्दी चित्रमय जगत्, नागरी प्रचारक, शिक्षा, मनोरंजन आदि प्रसिद्ध पत्रोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। दो तीन ग्रन्थ और तैयार हो रहे हैं। आशा है कि हमारे जैनी भाई इन सब ग्रन्थोंको मँगाकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करेंगे।

प्रतिभा उपन्यास ।

मानवचरितको उदार और उन्नत बनानेवाला, आदर्श धर्मवीर और कर्मवीर बनानेवाला हिन्दीमें अपने ढँगका यह पहला ही उपन्यास है। इसकी रचना भी बड़ी ही सुन्दर प्राकृतिक और भावपूर्ण है। पक्की कपड़ेकी जिल्द सहित मूल्य सवा रुपया, सादी जिल्दका १)

जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित ।

स्वाधीनता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले इस विद्वान्का जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनाहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

सरस्वती-सम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीकृत

स्वाधीनता ।

अर्थात्

प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिलकी

लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद

और

जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी कृत
जा० स्टु० मिलका विस्तृत जीवनचरित ।

यह हिन्दी साहित्यका अनमोलरत्न, राजनैतिक सामाजिक और मानसिक स्वाधीनताके तत्त्वोंका अचूक शिक्षक, उच्च स्वाधीन विचारोंका कोश, अकाट्य युक्तियोंका आकर, और मनुष्यसमाजके ऐहिक सुखोंका सच्चा पथप्रदर्शक ग्रन्थ प्रत्येक घर और प्रत्येक पुस्तकालयमें विराजमान होना चाहिए ।

जिन सिद्धान्तोंका विवेचन इस ग्रन्थमें किया गया है इस समय उनके प्रचारकी बड़ी भारी जरूरत है । जिन्होंने इस ग्रन्थको पढ़ा है, उनका विचार है कि इसके सिद्धान्तोंको सोनेके अक्षरोंमें लिखवाकर प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखना चाहिए । बिना ऐसे ग्रन्थोंके प्रचारके हमारे यहांसे अन्धपरम्परा और संकीर्णताका देशनिकाला नहीं हो सकता ।

ग्रन्थकी भाषा सरल बोधगम्य और सुन्दर है ।

सुन्दर छपाई, मजबूत कपड़ेकी मनोहर जिल्द, मिल और द्विवेदीजीके दो चित्र । पृष्ठसंख्या ४००, मूल्य दो रुपया ।

आँखकी किरकिरी ।

हिन्दीमें अभिनव उपन्यास ।

सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली कविवंर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'चो-खेरवाली' नामक बंगला उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है। हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी उपन्यास नहीं। इसमें मनुष्यके स्वाभाविक भावोंके चित्र खींचकर—उनके द्वारा मित्रकी तरह, आत्माकी तरह शिक्षा दी गई है। स्वतः हृदयको गुदगुदा कर परिणामोंको दिखा कर अच्छे विचारोंको विजय दिलानेवाली शिक्षा ही चिरस्थायिनी होती है। क्योंकि उसे ग्रहण करनेके लिए लेखक किसी तरहका आग्रह या अनुरोध नहीं करता। इस उपन्यासमें इस बातपर पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया है। स्वाभाविक चरित्रचित्रण अगर चित्रका रेखाचित्र है तो छोटे छोटे भावोंका चित्रण उसमें तरह तरहके रंगोंका भरना है, जिन रंगोंसे वह चित्र प्रस्फुटित हो उठता है। ऐसा चित्र बनाना रवीन्द्रबाबू जैसे सुचतुर शब्दचित्रकारका ही काम है। इसमें भावोंके उत्थान-पतन और उनकी विकाशशैली वर्षामें पहाड़ोंपरसे गिरते हुए झरनोंकी तरह बहुत ही मनोहारिणी है। हृदयके स्वाभाविक उद्गार—छोटी छोटी घटनाओंका बड़ी बड़ी घटनाओंके बीच हो जाना और उनके चकित कर देनेवाले परिणाम बड़े ही स्पृहणिय हैं। हम आपको विश्वास दिलाने हैं कि ऐसा उपन्यास हिन्दीमें तो क्या बड़ी बड़ी समृद्धिशालिनी भाषाओंमें भी नहीं है। छपाई, जिल्द आदि सभी लासानी।

मूल्य पौने दो रूपया ।

नवजीवन विद्या ।

जिनका विवाह हो चुका है अथवा जिनका विवाह होनेवाला है उन युवकोंके लिए यह बिलकुल नये ढंगकी पुस्तक हाल ही छपकर तैयार हुई है । यह अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर क्लॉविनके 'दी सायन्स आफ ए न्यू लाइफ' नामक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है । इसमें नीचे लिखे अध्याय हैं—१ विवाहके उद्देश्य और लाभ, २ किस उमरमें विवाह करना चाहिए, ३ स्वयंवर, ४ प्रेम और अनुरागकी परीक्षा, ५-६ स्त्रीपुरुषोंकी पसन्दगी, ७ सन्तानोत्पत्तिकारक अवयवोंकी बनावट, ९ वीर्यरक्षा, १० गर्भ रोकनेके उपाय, ११ ब्रह्मचर्य, १२ सन्तानकी इच्छा, १३ गर्भाधानविधि, १४ गर्भ, १५ गर्भपर प्रभाव, १६ गर्भस्थजीवका पालनपोषण, १७ गर्भाशयके रोग, १८ प्रसवकालके रोग, इत्यादि । प्रत्येक शिक्षित पुरुष और स्त्रीको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए । हम विश्वास दिलाते हैं कि इसे पढ़कर वे अपना बहुत कुछ कल्याण कर सकेंगे । पक्की जिल्द, मूल्य पौने दो रुपया ।

शेख चिल्लीकी कहानियां ।

पुराने ढंगकी मनोरंजक कहानियां हाल ही छपी हैं । बालक युवा वृद्ध सबके पढ़ने योग्य । मूल्य ॥)

ठोक पीटकर वैद्यराज ।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है । एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है । हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा । आजकल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सो भी मालूम हो जायगा । मूल्य सिर्फ चार आना ।

स्वामी और स्त्री ।

इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है । अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और

शिक्षित स्त्री अपढ़ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी संबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य, दश आना।

नये उपन्यास।

विचित्रवधूरहस्य—बंगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रबाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। बहुत ही करुणरसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ॥॥)

स्वर्णलता—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

माधवीकङ्कण—बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्रदत्तके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥॥)

षोडशी—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर ऍटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड-उपन्यास हैं। मूल्य १।)

महाराष्ट्रजीवनप्रभात—सर रमेशचन्द्र दत्तके बंगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है। मूल्य चौदह आने।

राजपूतजीवनसन्ध्या—यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

सुशीलाचरित—स्त्रियोपयोगी बहुत ही सुन्दर पुस्तक। मूल्य एक रुपया।

आश्चर्यजनक घटना या नौकाडूबी—कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगला उपन्यासका अतिशय भावपूर्ण अनुवाद। मूल्य १।)

समाज-बंगभाषाके प्रसिद्ध लेखक बाबू रमेशचंद्र दत्तके समाज उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है। यह सामाजिक उपन्यास है। मूल्य बारह आना।

अच्छी अच्छी पुस्तकें।

आर्यललना—सीता, सावित्री आदि २० आर्यस्त्रियोंका संक्षिप्तजीवन चरित। मू० १)

बालाबोधिनी—पाँच भाग। लड़कियोंको प्रारंभिक शिक्षा देनेकी उत्तम पुस्तकें। मूल्य क्रमसे =), ≡), १), १-), १=)।

आरोग्यविधान—आरोग्य रहनेकी सरल रीतियां। मू० =)॥

अर्थशास्त्रप्रवेशिका—सम्पत्तिशास्त्रकी प्रारंभिक पुस्तक। मूल्य १)

सुखमार्ग—शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त करनेके सरल उपाय। मूल्य १)

कालिदासकी निरंकुशता—महाकवि कालिदासके काव्यदोषोंकी समालोचना। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत। मूल्य १)

हिन्दीकोविदरत्नमाला—हिन्दीके ४० विद्वानों और सहायकोंके चरित। मू० १॥)

कर्तव्यशिक्षा—लार्ड चेस्टर फील्डका पुत्रोपदेश। मूल्य १)

रघुवंश—महाकवि कालिदासके संस्कृत रघुवंशका सरल, सरस और भावपूर्ण हिन्दी अनुवाद। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित। मूल्य २)

राविन्सन क्रूसो—इस विचित्र साहसी और उद्योगी पुरुषका जीवनचरित्र अवश्य पढ़ना चाहिए। कोई २७ वर्ष तक एक निर्जनद्वीपमें रहकर इसने अपनी जीवन रक्षा कैसे की; यह पढ़कर बड़ा कौतुक होता है। मूल्य १।)

पश्चिमी तर्क ।

पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा आविष्कृत न्यायशास्त्रके विषयोंका हिन्दीमें सरल ग्रंथ ।
मूल्य एक रुपिया ।

पतिव्रता ।

इस पुस्तकमें सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती, और शकुन्तला इन छह पतिव्रताओंका चरित लिखा गया है । इसकी भाषा बड़ी सरल और सरस है । मूल्य ॥१)

वाला पत्रबोधिनी ।

यह पुस्तक लड़कियोंके लिये बड़े कामकी है, इसमें पत्र लिखनेके नियम आदि बतानेके अतिरिक्त नमूनेके पत्र भी छपे हैं । इस पुस्तकसे लड़कियोंको पत्र लिखनेका ज्ञान तो होगा, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायगी । मूल्य ॥२)

मैथिलीशरण गुप्त कृत काव्य-ग्रन्थ ।

जयद्रथबध—यह वीर और करुणा रसका बिलक्षण काव्य है । कविता मर्मज्ञ विद्वानोंने इस काव्यकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है । बम्बईके सुप्रसिद्ध निर्णयसागरमें मोटे और चिकने कागजपर बड़ी सुन्दरतासे छपा है । मूल्य ॥)

रंगमें भंग—इस पुस्तकमें एक महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटनाका वर्णन है । कविता बड़ी सरस और प्रभावशालिनी है । बहुमूल्य आटोपेपर पर छपी है । मूल्य ॥)

पद्य-प्रबन्ध—यह गुप्तजीकी भिन्न भिन्न विषयोंपर अनेक ओजस्विनी कविताओंका अपूर्व संग्रह है । पद्यसंख्या ५०० से भी ऊपर है । मूल्य सिर्फ दश आना ।

मिलनेका पता:—

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो. गिरगांव-बम्बई ।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें ।

चित्रमयजगत्—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है । “इले-स्ट्रेटेड लंडन न्यूज” के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है । एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं । चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं । साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है । जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है । रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं । आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है । साधारण काग-जका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ॥) है ।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र—राजा साहबके चित्र संसारभरमें नाम पा चुके हैं । उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपर-पर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है । इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरण-के हैं । राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है । टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है । मूल्य है सिर्फ १) ६० ।

चित्रमय जापान—घर बैठे जापानकी सैर । इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं । पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपरपर छपी है । मूल्य एक रुपया ।

सचित्र अक्षरबोध—छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है । अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है । पुस्तकका आकार बड़ा है । जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं । मूल्य छह आना ।

वर्णमालाके रंगीन ताश—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं । सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं । अवश्य देखिये । फी सेट चार आने ।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त “सचित्र अक्षरबोध” के ढंगकी है । इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं । वस्तुचित्र सब रंगीन हैं । आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है । इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं ।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७ × ५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८ × १० मूल्य प्रति संख्या एक आना।

लिथोके बढियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र।) और चारों मिलकर ॥), नानक पंथके दस गुरु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६ × २० मूल्य प्रति चित्र।) आने।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडर गार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे ड्राईगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

वैद्य मासिकपत्र ।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक सच्चे वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्यरक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्यशास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके रोगोंका इलाज आदि अच्छे अच्छे लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी फीस केवल १) २० है। नमूना मुफ्त।

वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, मुरादाबाद।

लीजिये

न्योछावर घटा दी गई ।

जिनशतक—समंतभद्रस्वामीकृत मूल, संस्कृतटीका और भाषाटीकासहित न्यो० ॥)

धर्मरत्नोद्योत—चौपाई बंध पृष्ठ १८२ न्यो० १)

धर्मप्रश्नोत्तर (प्रश्नोत्तरश्रावकाचार) वचनिका न्यो० २)

ये तीनों ग्रंथ ३॥) रुपयोंके हैं, पोष्टेज खर्च ॥) आने । कुल ३॥॥) होते हैं सो तीनों ग्रंथ एक साथ मंगानेवालोंको मय पोस्टेजके ३) रुपयोंमें भेज देंगे और जिनशतक छोड़कर दो ग्रंथ मंगानेवालोंको २॥॥) में भेज दिये जायंगे । यह नियम सर्वसाधारण भाइयोंके लिये है । एजेंट वा रईसोंके लिये नहीं है ।

मूल संस्कृत और सरल हिंदी वचनिका सहित श्री आदिपुराणजी ।

इस महान् ग्रंथके श्लोक अनुमान १३००० के हैं और इसकी पुरानी वचनिका २५००० श्लोकोंमें बनी हुई है । पहिले इसीके छपानेका विचार था परंतु मूल श्लोकोंसे मिलानेपर मालूम हुआ कि यह अनुवाद पूरा नहीं है । भाषा भी ढूंढाड़ी है, सब देशके भाई नहीं समझते । इस कारण हमने अत्यन्त सरल, सुंदर अति उपयोगी नवीन वचनिका बनवाकर मोटे कागजोंपर शुद्धतासे छपाना शुरू किया है । वचनिकाके ऊपर संस्कृत श्लोक छपनेसे सोनेमें सुगंध हो गई है । आप देखेंगे तो खुश हो जायंगे । इसके अनुमान ५०,००० श्लोक और २००० पृष्ठ होंगे । सबकी न्योछावर १४) रु० हैं । परंतु सब कोई एक साथ १४) रु० नहीं दे सकते, इस कारण पहिले ५) रु० लेकर ७०० पृष्ठ तक ज्यों ज्यों छपेगा हर दूसरे महीने पोस्टेज खर्चके बी. पी. से भेजते जायंगे । ७०० पृष्ठ पहुंच जानेपर फिर ५) रु० मंगावेंगे और ७०० पृष्ठ भेजेंगे । तीसरी बार ४) रु० लेकर ग्रंथ पूरा कर दिया जायगा । फिलहाल ३०० पृष्ठ तैयार हैं । ५॥) में मय गत्तोंके बी. पी. से भेजा जाता है । चौथा अंक भी छप रहा है ।

यह ग्रंथ ऐसा उपयोगी है कि सबके घरमें स्वाध्यायार्थ विराजमान रहे । यदि ऐसा न हो तो प्रत्येक मंदिरजी व चैत्यालयमें तो अवश्य ही एक एक प्रति मंगाकर रखना चाहिये ।

पत्र भेजनेका पता—लालाराम जैन,

प्रबंधक स्याद्वादरत्नाकर कार्यालय, कोल्हापुर सिटी ।

सनातन जैनग्रंथमाला ।

इस ग्रंथमालामें सब ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत, व संस्कृत टीकासहित ही छपते हैं। यह ग्रंथमाला प्राचीन जैनग्रंथोंका जीर्णोद्धार करके सर्वसाधारण विद्वानोंमें जैनधर्मका प्रभाव प्रगट करनेकी इच्छासे प्रगट की जाती है। इसमें सब विषयोंके ग्रंथ छपेंगे। प्रथम अंकमें सटीक आत्मपरीक्षा और पत्रपरीक्षा छपी है। दूसरे अंकमें समयसारनाटक दो संस्कृत टीकाओंसहित छपा है। तीसरे अंकमें अकलङ्कदेवका राजवार्तिक छपा है। चौथे अंकमें देवागमन्याय वसुनंदिटीका और अष्टशतीटीकासहित और पुरुषार्थसिद्धयुपायसटीक छपेगा। इसके प्रत्येक अंकमें सुपररायल ८ पेजी १० फारम ८० पृष्ठ रहेंगे। समयसारजी ४ अंकोंमें पूरा होगा। इनके पश्चात् राजवार्तिकजी व पद्मपुराणजी वगैरह बड़े २ ग्रंथ छपेंगे। १२ अंककी न्योछावर ८) रु० है। डांक खर्च जुदा है। प्रत्येक अंक डांकखर्चके वी. पी. से भेजा जायगा।

यह ग्रंथमाला जिनधर्मका जीर्णोद्धार करनेका कारण है। इसका ग्राहक प्रत्येक जैनीभाई व मंदिरजीके सरस्वतीभंडारको बनकर सब ग्रंथ संग्रह करके संरक्षित करना चाहिये और धर्मात्मा दानवीरोंको इकट्ठे ग्रंथ मंगाकर अन्यमती विद्वानोंको तथा पुस्तकालयोंको वितरण करना चाहिये।

चुन्नीलालजैनग्रंथमाला ।

इस ग्रंथमालामें हिन्दी, बंगला, मराठी और गुजराती भाषामें सब तरहके छोटे छोटे ग्रंथ छपते हैं। जो महाशय एक रुपिया डिपाजिटमें रखकर अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लेंगे, उनके पास इस ग्रंथमालाके सब ग्रंथ पौनी न्योछावरमें भेजे जायेंगे और जो महाशय इस संस्थाके सहायक हैं उनको एक एक प्रति विना मूल्य भेजी जायगी।

मिलनेका पता—पन्नालाल बाकलीवाल,

मंत्री—भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशनी संस्था,

ठि० मेदागिनी जैनमंदिर बनारस सिटी ।

उत्तमोत्तम लेख व कविताओंसे विभूषित
हिन्दी भाषाकी
सचित्र नवीन मासिक पत्रिका
“ प्रभा । ”

वार्षिक मूल्य केवल ३) रुपये ।

प्रति मासकी शुद्धा प्रतिपदाको प्रकाशित होती है । महात्मा स्टेड सम्पादित रिव्यू ऑफ रिव्यूजके आदर्शपर यह निकाली गई है । इसमें नीति, सुधार, साहित्य, समाज, तत्त्व तथा विज्ञानपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर हिन्दीकी सेवा करना इसका एकमात्र ध्येय है । हिन्दीके भारी भारी विद्वान् व कवि इसके लेखक हैं । आप पहिले केवल १) आनेके पोस्टेज टिकिट भेजकर नमूना मँगाकर देखिये ।

आपने प्रभापर की हुई समालोचनाएं पढ़ी ही होंगी । प्रभाके लेखक वे ही महामान्य हैं, जिनके नाम हिन्दीसंसारमें बार बार लिए जाते हैं । तीन रङ्गोंमें विभूषित एक चतुर चित्रकारका अनुपम चित्र कन्हारकी शोभा बढ़ा रहा है । प्रभाके लेखों एवं चित्रोंका स्वाद तो आप तभी पा सकते हैं जब उसकी किसी भी मासकी एक प्रति देख लें ।

प्रभाकी प्रशंसामें अधिक कहना व्यर्थ है ।

मैनेजर— प्रभा

खंडवा, (मध्यप्रदेश) ।

अध्यापकोंकी आवश्यकता ।

(१) तिलोकचन्द जैन हाईस्कूल इन्दौरके लिए एक ऐसे अनु-
भवी जैन अध्यापककी आवश्यकता है जो गोमट्टसार, राजवार्तिक
सर्वार्थसिद्धि पंचाध्यायी सागारधर्मानृत आदि प्राकृत, संस्कृत, धार्मिक
ग्रन्थोंका अच्छा ज्ञाता हो तथा जिसने किसी पाठशालामें अध्या-
पकी करनेका अनुभव प्राप्त किया हो । जो सरल हिन्दी भाषामें
व्याख्यान देकर तत्त्वज्ञानका रहस्य विद्यार्थियोंके हृदयमें प्रविष्ट
करा सकता हो । जिसके उच्चारण व लेख भी शुद्ध हों । इसके साथ
२ उन्हें अन्यधर्मों तथा पाश्चात्य तत्त्वज्ञानका भी बोध होना
चाहिये । भेट योग्यतानुसार रु० ५०) से रु० ६०) मासिक तक
दी जावेगी । और प्रतिवर्ष ५) रु० की वृद्धिसे १००) तक हो
सकेगी ।

(२) तिलोकचंद जैन हाईस्कूल इन्दौरके लिए एक ऐसे जैन
विद्वान्की भी आवश्यकता है जो किंडर गार्टन व प्रारंकिभ श्रेणि-
योंके छात्रोंको दिग्म्बर जैन धर्मके कर्म सिद्धान्त तथा क्रियाओंका
व्यावहारिक ज्ञान करा सकते हों, जो सरल शुद्ध हिन्दीमें दृष्टान्तों
द्वारा विद्यार्थियोंके हृदयमें धर्मका बीजारोपण कर सकते हों,
जिनका लेख व उच्चारण शुद्ध तथा व्यवहार भी छात्रोंके लिए
प्रभावोत्पादक हो । भेट योग्यतानुसार रु. २५) से रु. ३५)
मासिक तक दी जावेगी, और वार्षिक ५) रु० वृद्धिसे ६०) रु.
तक बढ़ सकेगी ।

बुधमल पाटणी

मंत्री—तिलोकचंद जैन हाईस्कूल इन्दौर.

पवित्र असली, २० वर्षकी आजमूदा, सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त,
प्रसिद्ध हाजमेकी, अक्सीर दवा,

नमक

सुलेमानी

फायदा न करे तो दाम वापिस।

यह नमक सुलेमानी पेटके सब रोगोंको नाश करके पाचनशक्तिको बढ़ाता है जिससे भूख अच्छी तरह लगती है, भोजन पचता है और दस्त साफ होता है। आरोग्यतामें इसके सेवनसे मनुष्य बहुतसे रोगोंसे बचा रहता है। इसके सेवनसे हैजा, प्रमेह, अपच, पेटका, दर्द, वायुशूल, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर, कब्ज, खट्टी डकार, छातीकी जलन, बहुमूत्र, गठिया, खाज खुजली आदि रोगोंमें तुरन्त लाभ होता है। बिच्छू, भिड, बरोंके काटनेकी जगह इसके मलनेसे लाभ होता है। स्त्रियोंकी मासिक खराबीकी यह दुरुस्ती करता है। बच्चोंके अपच दस्त होना, दूध डालना आदि सब रोगोंको दूर करता है। इससे उदरी, जलेदर, कोष्ठवृद्धि, यकृत, प्लीहा, मन्दाग्नि, अम्लशूल और पित्तप्रकृति आदि सब रोग भी आराम होते हैं। अतः यह कई रोगोंकी एक दवा सब गृहस्थोंको अवश्य पास रखनी चाहिये। व्यवस्थापत्र साथ है। कीमत फी शीशी बड़ी ॥ आठ आना। तीन शी० १॥=); छह शी० २॥); एक दर्जन५) डांकखर्च अलग।

दद्रुदमन-दादकी अक्सीर दवा। फी डिब्बी।) आना।

दन्तकुसुमाकर-दांतोंकी रामबाण दवा। फी डिब्बी।) आना।

नोट—हमारे यहां सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाएं तैयार रहती हैं। विशेष हाल जाननेको बड़ी सूची मंगा देखो।

मिलनेका पता:—

चंद्रसेन जैनवैद्य इटावा।

नई पुस्तकें ।

समाज ।

बंग साहित्य सम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद । इस पुस्तककी प्रशंसा करना व्यर्थ है । सामाजिक विषयोंपर पाण्डित्यपूर्ण विचार करनेवाली यह सबसे पहली पुस्तक है । इस पुस्तकमेंके समुद्रयात्रा, अयोग्यभक्ति, आचारका अत्याचार आदि दो तीन लेख पहले जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुके हैं । जिन्होंने उन्हें पढ़ा होगा वे इस ग्रन्थका महत्त्व समझ सकते हैं । मूल्य आठ आना ।

प्रेम भाकर ।

रूसके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा टाल्सटायकी २३ कहानियोंका हिन्दी अनुवाद । प्रत्येक कहानी दया, करुणा, विश्वव्यापी प्रेम, श्रद्धा और भक्तिके तत्त्वोंसे भरी हुई है । बालक स्त्रियां, जवान बूढ़े सब ही इनसे शिक्षा उठा सकते हैं । मू० १)

स्वर्गीय कविवर दानतरायजीकृत दानतविलास या धर्मविलास

छपकर तैयार है ।

चरचाशतक, द्रव्यसंग्रह, पदसंग्रह आदि जो जुदा पुस्तकाकार छप चुके हैं उन्हें छोड़कर इसमें दानतरायजीकी सारी कविताओंका संग्रह है । निर्णयसागरमें खूब सुन्दरतासे छपाया गया है । मूल्य भी बहुत कम अर्थात् एक रुपया है । मंगानेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिए ।

नागकुमार चरित ।

उभय भाषा कवि चक्रवर्ती मल्लिषेण सूरिके संस्कृत ग्रन्थका सरल हिन्दी अनुवाद पं० उदयलालजीने लिखा है । हाल ही छपा है । मूल्य छह आना ।

यात्रादर्पण ।

तीर्थोंकी यात्राका इससे बड़ा विवरण अब तक नहीं छपा । इसमें संपूर्ण सिद्धक्षेत्र, प्रसिद्ध मन्दिर और शहरोंका वर्णन है । इतिहासकी बातें भी लिखी गई हैं । जैन डिरेक्टरी आफिसने इसे बड़े परिश्रम और खर्चसे तैयार कराई है । साथमें रेलवे आदिका मार्ग बतलानेवाला एक बड़ा नकशा है । पक्की कपड़ेकी जिल्द है । बड़े साइजके ३५९ पृष्ठ हैं । मूल्य दो रुपया ।

मिलनेका पता:—

जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई ।